स्थापित वर्ष 1956

वर्ष 2006–2007

स्वर्ण जयन्ती विशेषांक

वातायन

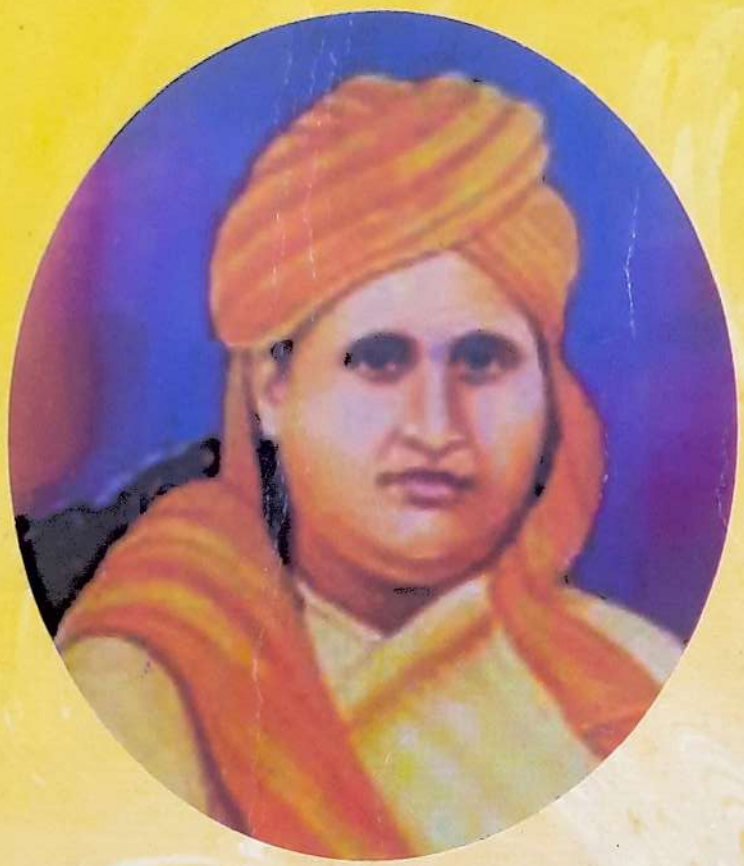

दयानन्द एंग्लो वैदिक स्नातकोत्तर महाविद्यालय

बुलन्दशहर

(चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ से सम्बद्ध)

वन्दना

यदुनाथ 'यदु'
प्रयोगशाला सहायक
रसायन विज्ञान विभाग

मात श्वेताम्बरी ज्ञान की निर्झरी।
मन में मेरे बसी है तेरी अर्चना।।
तुमसे आशा यही, निखरे प्रतिभा मेरी।
इन्दु सी स्निधता, जब कृपा हो तेरी।।
अंजु की अंजुली भर, अंशु की अरुणिमा।
हो कृपा ही सदा न, वक्र हो भंगिमा।।
निष्कलित रहूँ, पूर्ण हो साधना।
मन में मेरे बसी है तेरी अर्चना।।
शिवानी सा संशय, न मन में जगे।
ज्ञान अनुरक्ति ही, मेरे मन में पगे।।
हो धरा–धैर्य सा, मन मेरे प्रस्फुटन।
पल सके कोई कुंठा, न कोई घुटन।।
द्वेष ईर्ष्या मिटे, स्नेह की भावना।
मन में मेरे बसी है तेरी अर्चना।।
इस भयाक्रान्त जग को, दिला मुक्ति तू।
बह सके नेह–निर्झर, बता युक्ति तू।।
कर प्रवाहित हृदय में, मानवी रागिनी।
कर सके न प्रताड़ित, दानवी दामिनी।।
कर प्रभंजित अहं, मम यही याचना।
मन में मेरे बसी है तेरी अर्चना।।
उर्मि में तार वीणा की, झनकार के।
हों तिरोहित दुःखद भाव, संसार के।।
धो के मालिन्य मन का, तू कर दे विमल।
ज्यों सरोवर में खिलता हुआ हो कमल।।
हे! दया आगरी 'यदु' की है कामना।
मन में मेरे बसी है तेरी अर्चना।।

स्वर्ण जयन्ती विशेषांक

डी0ए0वी0 स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बुलन्दशहर

वातायन पत्रिका सम्पादक-मण्डल

वर्ष 2006-2007

संरक्षक

डॉ0 सी0 पी0 गुप्त

कार्यवाहक प्राचार्य

प्रधान सम्पादक

डॉ0 विकास शर्मा

अध्यक्ष - अंग्रेजी विभाग

सम्पादक मण्डल

डॉ0 रानीबाला गौड़

रीडर-हिन्दी विभाग

डॉ एम0 के0 जैन

अध्यक्ष - गणित विभाग

श्री ज्ञानेन्द्र शर्मा

वरिष्ठ प्रवक्ता-इतिहास विभाग

डॉ0 अंजू रस्तोगी

अध्यक्ष-संस्कृत विभाग

डॉ0 राजेन्द्र सिंह

अध्यक्ष - अर्थशास्त्र विभाग

वा ता य न

चौ0 चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ
Ch. Charan Singh University, Meerut

प्रो0 सन्तप्रसाद ओझा
एफ0 इन्स्टी0 पी0 (लन्दन)
कुलपति

Prof. S. P. Ojha
F. Inst. P. (London)
Vice Chancellor

सन्देश

प्रिय महोदय,

मुझे अत्यन्त हर्ष हो रहा है कि डी0 ए0 वी0 स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बुलन्दशहर गत वर्षों की भाँति इस वर्ष भी अपनी महाविद्यालय वार्षिक एवं स्वर्ण जयन्ती पत्रिका "वातायन" का प्रकाशन कर रहा है। मैं आशा करता हूँ कि पत्रिका में महाविद्यालय द्वारा छात्रहित में किये जा रहे प्रयासों का विस्तृत उल्लेख किया जायेगा जिससे छात्र/छात्राओं का सार्वभौमिक विकास एवं उच्च शिक्षा के प्रति लगाव हो सके तथा यह पत्रिका स्वःरोजगारोन्मुख शिक्षा ग्रहण करने हेतु मार्ग दर्शन करेगी। महाविद्यालय द्वारा पत्रिका का प्रकाशन एक सराहनीय कदम है।

पत्रिका के सफल प्रकाशन की शुभकामनाओं के साथ।

भवनिष्ठ

S. P. Ojha

(प्रो0 एस0पी0 ओझा)

डॉ0 विकास शर्मा
प्रधान सम्पादक
"वातायन" वार्षिक पत्रिका
डी.ए.वी. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बुलन्दशहर

वातायन

आलोक कुमार
आई ए एस
जिलाधिकारी / जिला मजिस्ट्रेट
बुलन्दशहर

दूरभाष कार्यालय : 280351
दूरभाष निवास : 231343
फैक्स : 280898
एस.टी.डी. कोड : 05732
अर्ध.शा.पत्रा.स. /एस.टी.डी.एम./
कार्यालय जिला मजिस्ट्रेट, बुलन्दशहर

सन्देश

प्रिय महोदय,

अत्यन्त हर्ष का विषय है कि डी0ए0वी0 (स्नातकोत्तर) महाविद्यालय, बुलन्दशहर की वार्षिक पत्रिका 'वातायन 2006' प्रकाशित होने जा रही है। यह पत्रिका छात्रों में भारतीय संस्कृति एवं आदर्शों के प्रति आत्म गौरव का भाव जाग्रत करने में सफल होगी तथा उदीयमान छात्र/छात्राओं के बौद्धिक विकास एवं सृजनात्मक लेखन को गतिशीलता प्रदान करेगी। इस अवसर पर मैं महाविद्यालय के प्राचार्य, सम्पादन मण्डल, समस्त प्राध्यापकों/कर्मचारियों एवं छात्र/छात्राओं को शुभकामनाऐं प्रदान करता हूँ तथा पत्रिका के सफल प्रकाशन की मंगल कामना करता हूँ।

सादर,

भवदीय

(आलोक कुमार)
जिलाधिकारी, बुलन्दशहर

डॉ0 सी0पी0 गुप्त
प्राचार्य
डी.ए.वी. (स्नातकोत्तर) महाविद्यालय,
बुलन्दशहर

प्राचार्य { कार्यालय : 234655
निवास : 234588

डी0ए0वी0 (स्नातकोत्तर) महाविद्यालय

(सम्बद्ध : चौ0 चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ)
बुलन्दशहर – 203001

सन्देश

मुझे यह जानकर असीम प्रसन्नता की अनुभूति हो रही है कि इस वर्ष महाविद्यालय अपने जीवन के पचास वर्ष पूर्ण कर रहा है। स्वर्ण जयन्ती वर्ष के अवसर पर महाविद्यालय अपनी वार्षिक पत्रिका 'वातायन' का भी प्रकाशन कर रहा है। निःसन्देह पचास वर्ष का समय किसी भी महाविद्यालय के शैक्षणिक व अकादमिक जीवन में काफी महत्वपूर्ण होता है।

महाविद्यालय की वार्षिक पत्रिका वहां के प्राध्यापकों व छात्र-छात्राओं की बौद्धिक यात्रा का दर्पण होती है। पत्रिका महाविद्यालय स्तर पर रचनात्मक लेखन को प्रोत्साहित करने का भी एक सशक्त माध्यम है। मुझे आशा ही नहीं अपितु पूर्ण विश्वास है कि 'वातायन' के माध्यम से महाविद्यालय में सर्जना का एक नया आयाम स्थापित होगा। मैं पत्रिका के सफल प्रकाशन के लिए समस्त महाविद्यालय परिवार को हार्दिक बधाई देता हूँ

भवदीय

अनिल गर्ग

(अनिल कुमार गर्ग)
सचिव, प्रबन्ध समिति
डी0ए0वी0 (पी0जी0) कॉलिज
बुलन्दशहर

डॉ0 विकास शर्मा
प्रधान सम्पादक
"वातायन" वार्षिक पत्रिका
डी.ए.वी. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बुलन्दशहर

वातायन

सम्पादकीय .....

किसी भी राष्ट्र के भविष्य का उत्तरदायित्व युवाओं पर होता है। आने वाला कल युवाओं का है। प्रत्येक बड़े से बड़ा पद उनकी प्रतीक्षा कर रहा है। किन्तु उस पद तक पहुँचने की यात्रा बहुत लम्बी है और साथ ही ऐसे महिमामय पद अपरिपक्व व अधकचरे मस्तिष्क के हाथों भी नहीं सौपे जा सकते। उन पदों पर युवाओं को पहुंचाने से पूर्व उनको सम्यक् प्रशिक्षण दिया जाना भी आवश्यक व अपरिहार्य है। युवाओं को सकारात्मक दिशा में प्रशिक्षित करने का दायित्व भी देश की बुजुर्ग व अनुभवी पीढ़ी का है। लेकिन यह भी कटु सत्य है कि बदलते नैतिक मूल्यों व मान्यताओं ने युवा पीढ़ी को कुछ सीमा तक दिशाहीन व दिग्भ्रमित कर दिया है। हिन्दी फिल्मों के नायक-नायिका अब उनके आदर्श बनते जा रहे हैं। राष्ट्र के नीतिनिर्माता राजनेता व युवाओं को प्रशिक्षित करने के दायित्व का निर्वहन करने वाले शिक्षक अब उन्हें आकर्षित नहीं करते। यही कारण है कि गाँधी, नेहरू, लाल बहादुर शास्त्री व लोकनायक जयप्रकाश नारायण के इस देश में आज कोई भी राजनेता युवाओं के लिए प्रेरणास्रोत नहीं रह गया है। युवाओं के चेहरों पर निराशा, कुंठा व अपने भविष्य के प्रति अनिश्चितता स्पष्ट देखी जा सकती है। इसी अनिश्चितता ने देश की युवा पीढ़ी को असमय ही 'बूढा' व हताश बना दिया है। अंग्रेजी के रोमांटिक कवि जॉन कीट्स ने उन्नीसवीं शताब्दी के युवा की दशा का वर्णन करते हुए कहा था -

"Where youth grows pale and spectre thin and dies."

भारतीय रचनाकार भी युवाओं की स्थिति देखकर कराह उठता है :-

"राणा सांगा की संतान हाय हिजड़ी सी लगती है,
देश की यह भावी पीढ़ी आज बूढ़ी सी लगती है।"

सच यह है कि युवा पीढ़ी भय, हताशा और निराशा के चंगुल में फंसी है। राष्ट्र की स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष करने व 1975 में लोकनायक जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में अधिनायकवाद के विरूद्ध अमेठी व रायबरेली की गलियों में घूमने वाला युवा अब 'मॉल संस्कृति' व Rave Party के संक्रमण से ग्रस्त है। गुरूदक्षिणा में 'अंगूठा' देने वाला एकलव्य अपने द्रोणाचार्यों को ठेंगा दिखाना अपनी बहादुरी समझने लगा है। विश्वविद्यालयों में कुलपतियों व महाविद्यालयों में प्राचार्यों के दिन-प्रतिदिन के अमर्यादित घेराव व प्रदर्शन

आधुनिक 'अर्जुनों' के प्रार्दुभाव का स्पष्ट संकेत दे रहे हैं। इस सब का दुष्परिणाम विश्वविद्यालयों व महाविद्यालयों में युवाओं की 'बौद्धिक दरिद्रता' के रूप में देखा जा सकता है। विश्वविद्यालयों की उच्चतम उपाधियाँ भी बेमानी होती जा रही हैं। शिक्षण संस्थानों में कक्षाओं में छात्रों की घटती उपस्थिति शिक्षकों को अपनी उपयोगिता व सार्थकता के विषय में चिन्तन को विचलित कर रही हैं। इन सब तथ्यों के बावजूद यह भी सत्य है कि अनवरत व निरर्थक आलोचना अवमूल्यन व नकारात्मकता का संकट पैदा करती है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि किसी चमत्कार की प्रतीक्षा किए बिना अपनी युवा पीढ़ी को राष्ट्रकवि दिनकर के शब्दों में सार्थक संदेश दें :-

"सेनानी करो प्रयाण, यह भावी इतिहास तुम्हारा है।
ये अखत अमां के बुझते हैं, सारा आकाश तुम्हारा है।।"

महाविद्यालय की वार्षिक पत्रिका में छात्रों को उचित प्रतिनिधित्व मिले, ऐसी मेरी मान्यता है। किन्तु छात्रों में मौलिकता का अभाव व 'भाषायी पंगुता' ने जहाँ एक ओर पत्रिका के आकार को न्यूनतम किया है वहीं 'स्वर्ण जयन्ती वर्ष' होने के कारण मेरा यह प्रथम प्रयास स्मरणीय, संग्रहणीय, पठनीय व स्तरीय बन सके, एतदर्थ पुरातन छात्रों के संस्मरणों व प्राध्यापकों के शोधपरक लेखों को प्रमुखता व वरीयता देना मेरी विवशता रही है।

- (डॉ0 विकास शर्मा)
प्रधान सम्पादक

प्राचार्य की लेखनी से

महाविद्यालय की वार्षिक पत्रिका किसी भी प्राचार्य के लिए अपने समस्त छात्रों को प्रत्यक्ष सन्देश देने का एक सशक्त व प्रभावी माध्यम है। सन् 1956 में स्थापित यह महाविद्यालय वर्ष 2006-2007 में अपने पचास वर्ष पूरे कर रहा है। इन पचास वर्षों में हमने क्या खोया, क्या पाया, इसका आकलन करना भी इस शिक्षण संस्था से जुड़े प्रत्येक व्यक्ति का दायित्व है। अतीत का गौरवगान हमें स्वाभिमान, साहस व सकारात्मकता का सन्देश अवश्य देता है। किन्तु उपलब्धियाँ असफलताओं में परिवर्तित न हो जाएँ, इस तथ्य के प्रति भी सचेत करता है। गत पचास वर्षों में इस महाविद्यालय ने योग्य प्राध्यापक, वैज्ञानिक, अधिकारी, पत्रकार, राजनेता, व्यवसायी व कुशल गृहणियां समाज को दी हैं। महाविद्यालय से उच्च शिक्षा प्राप्त कर चुके विद्यार्थी राष्ट्र की सेवा में अनवरत लगे हैं व महाविद्यालय से प्राप्त शिक्षा की सार्थकता को प्रमाणित कर रहे हैं। वर्तमान में महाविद्यालय में कला एवं विज्ञान वर्ग में नौ विषयों में स्नातकोत्तर कक्षायें चल रही हैं व समस्त विषयों में शोधकार्य जारी है। लगभग चार हजार छात्र-छात्राओं की संख्या वाले इस महाविद्यालय के प्राध्यापक अपने-अपने विषयों में अकादमिक गतिविधियों में लगे हैं।

पत्रिका के प्रधान सम्पादक महाविद्यालय के अंग्रेजी विभागाध्यक्ष डॉ0 विकास शर्मा ने अल्प समय में व सीमित साधनों के बावजूद पत्रिका को अकादमिक ऊँचाइयों तक पहुंचाने का प्रयास किया है। पत्रिका के सफल प्रकाशन के लिए मैं डॉ0 विकास शर्मा सहित समस्त सम्पादक मण्डल को धन्यवाद देता हूँ।

(डॉ0 सी0 पी0 गुप्त)
कार्यवाहक प्राचार्य

वातायन

प्रबन्ध समिति

डी0ए0वी0 स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बुलन्दशहर

1.	जिलाधिकारी/पदेन अध्यक्ष	– प्रबन्ध समिति
2.	श्रीराज कुमार अग्रवाल	– वरिष्ठ उपाध्यक्ष
3.	श्री शिवनारायन बंसल	– उपाध्यक्ष
4.	श्री अनिल कुमार गर्ग	– सचिव
5.	श्री जितेन्द्र प्रसाद गुप्त	– सह सचिव
6.	श्री वीरेन्द्र कुमार गोविल	– कोषाध्यक्ष
7.	श्री आनन्द कुमार कंसल	– कार्यकारिणी सदस्य
8.	श्री हरिश्चन्द्र शर्मा	– कार्यकारिणी सदस्य
9.	श्री विजयवीर प्रसाद	– कार्यकारिणी सदस्य
10.	श्री ऋषि कुमार जालान	– कार्यकारिणी सदस्य
11.	श्री पृथ्वीनाथ गोविल	– कार्यकारिणी सदस्य
12.	श्री राजीव बंसल	– कार्यकारिणी सदस्य
13.	डॉ0 देवेन्द्र कुमार शर्मा	– कार्यकारिणी सदस्य
14.	श्री अनिल बंसल	– कार्यकारिणी सदस्य
15.	श्री राजेश सिंघल	– कार्यकारिणी सदस्य
16.	डॉ0 सी0पी0 गुप्त	– कार्यवाहक प्राचार्य
17.	डॉ0 राजेन्द्र सिंह	– शिक्षक प्रतिनिधि
18.	डॉ0 उर्मिला शर्मा	– शिक्षक प्रतिनिधि
19.	डॉ0 अन्जू गर्ग	– शिक्षक प्रतिनिधि
20.	श्री उमेश भटनागर	– गैर शिक्षक प्रतिनिधि

अनिल गर्ग

सचिव, प्रबन्ध समिति

कार्यवाहक प्राचार्य डॉ० सी० पी० गुप्त

महाविद्यालय परिवार

1.	डॉ0 सी0पी0 गुप्त	कार्यवाहक प्राचार्य
2.	डॉ0 ए0पी0 तिवारी	रीडर एवं अध्यक्ष, रसायन विज्ञान विभाग
3.	डॉ0 एम0के0 जैन	रीडर एवं अध्यक्ष, गणित विभाग
4.	डॉ0 ए0के0 शर्मा	रीडर एवं अध्यक्ष, भौतिक विज्ञान विभाग
5.	डॉ0 (श्रीमती) प्रतिभा गुप्ता	रीडर एवं अध्यक्ष, इतिहास विभाग
6.	डॉ0 आर0 एस0 उपाध्याय	रीडर, भौतिक विज्ञान विभाग
7.	श्री श्यौराज सिंह	वरिष्ठ प्रवक्ता व अध्यक्ष, शारीरिक शिक्षा विभाग
8.	डॉ0 वी0पी0 गौतम	रीडर एवं अध्यक्ष, राजनीति विज्ञान विभाग
9.	डॉ0 (श्रीमती) आशा रानी शर्मा	रीडर एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
10.	डॉ0 (श्रीमती) रानी बाला गौड़	रीडर, हिन्दी विभाग
11.	श्री जी0पी0 शर्मा	वरिष्ठ प्रवक्ता, इतिहास विभाग
12.	डॉ0 राजेन्द्र सिंह	रीडर एवं अध्यक्ष, अर्थशास्त्र विभाग
13.	डॉ0 (श्रीमती) अंजू गर्ग	रीडर, अर्थशास्त्र विभाग
14.	डॉ0 (श्रीमती) उर्मिला शर्मा	रीडर, हिन्दी विभाग
15.	डॉ0 (श्रीमती) रेनू अग्रवाल	रीडर एवं अध्यक्ष, समाजशास्त्र विभाग
16.	डॉ0 (श्रीमती) अंजू रस्तौगी	रीडर एवं अध्यक्ष, संस्कृत विभाग
17.	डॉ0 (श्रीमती) अंशू सिंह	रीडर, इतिहास विभाग
18.	श्रीमती बी0डी0 दुबे	वरिष्ठ प्रवक्ता, अर्थशास्त्र विभाग
19.	डॉ0 शिवकान्त यादव	रीडर, राजनीति विज्ञान विभाग
20.	डॉ0 (श्रीमती) अलमाज जहाँ	प्रवक्ता, राजनीति विज्ञान विभाग
21.	डॉ0 ए0सी0 मित्तल	रीडर, अर्थशास्त्र विभाग
22.	डॉ0 (श्रीमती) इन्दु शर्मा	रीडर, राजनीति विज्ञान विभाग
23.	डॉ0 (श्रीमती) अंजू दुबे	वरिष्ठ प्रवक्ता, हिन्दी विभाग
24.	डॉ0 (श्रीमती) अर्चना सिंह	वरिष्ठ प्रवक्ता, हिन्दी विभाग
25.	डॉ0 विकास शर्मा	रीडर व अध्यक्ष, अंग्रेजी विभाग
26.	डॉ0 राजेश गर्ग	वरिष्ठ प्रवक्ता, इतिहास विभाग
27.	श्री राजीव सिरोही	प्रवक्ता, अर्थशास्त्र विभाग
28.	डॉ0 गौतमवीर	प्रवक्ता, राजनीतिविज्ञान विभाग
29.	श्रीमती सुनन्दा वशिष्ठ	प्रवक्ता, भौतिकी विभाग
30.	श्री आर0 सी0 अग्रवाल	वरिष्ठ प्रवक्ता, अंग्रेजी विभाग
31.	डॉ0 शिवरानी गर्ग	रीडर, हिन्दी विभाग

शिक्षणेत्तर कर्मचारी वर्ष 2006-2007

महाविद्यालय पुस्तकालय –

1. डॉ0 रामावता . शर्मा	वरिष्ठ पुस्तकालयाध्यक्ष
2. श्री कन्हैया लाल शर्मा	पुस्तकालयाध्यक्ष
3. श्रीमती उपमा वशिष्ठ	कैटलॉगर
4. श्री राम सुन्दर	पुस्तकालय लिपिक

मुख्य कार्यालय –

1. श्री महेन्द्र कुमार	आशु लिपिक
2. श्री दिलीप कुमार मिश्रा	नैत्यक लिपिक
3. श्री जगदीश प्रसाद	नैत्यक लिपिक

लेखा शाखा –

1. श्री ओमप्रकाश अग्रवाल	वरिष्ठ लिपिक
2. श्री महावीर प्रसाद शर्मा	नैत्यक लिपिक
3. श्री उमेश भटनागर	नैत्यक लिपिक
4. श्री विजेन्द्र सिंह राणा	नैत्यक लिपिक
5. श्री हाशम अब्बास	नैत्यक लिपिक

भौतिकी प्रयोगशाला –

1. श्री आशीष चन्द्रा	प्रयोगशाला सहायक

रसायन प्रयोगशाला –

1. श्री यदुनाथ	प्रयोगशाला सहायक

चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी

1. श्री गोपी चन्द
2. श्री जुम्मा खाँ
3. श्री लियाकत अली
4. श्री महावीर सिंह
5. श्री नवरतन सिंह
6. श्री मजनूँ लाल
7. श्री चुन्नी लाल
8. श्री भोजराज सिंह
9. श्री मदनपाल सिंह
10. श्री रामस्वरुप सिंह
11. श्री महीपाल सिंह
12. श्री लालजी मिश्रा
13. श्रीमती लता रानी शर्मा
14. श्री नरेन्द्र सत्यार्थी
15. श्री भूदेव सिंह
16. श्री राधेश्याम शर्मा
17. श्री श्याम सुन्दर
18. श्रीमती सुनीता
19. श्री राजकुमार

महाविद्यालय के शिक्षणेत्तर कर्मचारी कार्यवाहक प्राचार्य के साथ

महाविद्यालय की सांस्कृतिक गतिविधियों की एक झलक

प्रशासनिक समितियाँ (वर्ष 2006-2007)

नैक प्रबन्धन समिति –

1. डॉ. आर. एस. उपाध्याय	संयोजक
2. डॉ. राजेन्द्र सिंह	सदस्य
3. डॉ. एस. के. यादव	सदस्य
4. डॉ. ए. सी. मित्तल	सदस्य
5. डॉ. राजेश गर्ग	सदस्य
6. श्री राजीव सिरोही	सदस्य

अनुशासन समिति –

1. श्री श्यौराज सिंह	चीफ प्रोक्टर
2. डॉ. आर. एस. उपाध्याय	एडीशनल चीफ प्रोक्टर
3. श्री ज्ञानेन्द्र शर्मा	एडीशनल चीफ प्रोक्टर
4. डॉ. (श्रीमती) प्रतिभा गुप्ता	प्रोक्टर
5. डॉ. (श्रीमती) आशारानी शर्मा	प्रोक्टर
6. डॉ. राजेन्द्र सिंह	प्रोक्टर
7. डॉ. (श्रीमती) इन्दु शर्मा	प्रोक्टर
8. डॉ. एस. के. यादव	प्रोक्टर
9. डॉ. विकास शर्मा	प्रोक्टर
10. डॉ. राजेश गर्ग	प्रोक्टर

क्रीड़ा परिषद् –

1. प्राचार्य	पदेन अध्यक्ष
2. श्री श्यौराज सिंह	संयोजक
3. डॉ. एम. के. जैन	सदस्य
4. डॉ. आर. एस. उपाध्याय	सदस्य
5. डॉ. राजेन्द्र सिंह	सदस्य
6. डॉ. (श्रीमती) अन्जू गर्ग	सदस्य
7. डॉ. एस.के. यादव	सदस्य
8. डॉ. गौतम वीर	सदस्य

सांस्कृतिक एवम् साहित्यिक कार्यक्रम समिति

1. डॉ. ए. पी. तिवारी	संयोजक
2. डॉ. (श्रीमती) उर्मिला शर्मा	सदस्य
3. डॉ. (श्रीमती) अन्जू दुबे	सदस्य
4. डॉ. (श्रीमती) अर्चना सिंह	सदस्य
5. डॉ. विकास शर्मा	सदस्य
6. डॉ. राजेश गर्ग	सदस्य

अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति एवम् अन्य पिछड़ा वर्ग समिति

1. प्राचार्य	पदेन अध्यक्ष
2. डॉ (श्रीमती) रेनू अग्रवाल	संयोजक
3. श्री राम सुन्दर	कार्यालय सहायक

स्टूडेन्ट सहायता कोर एवं कल्याण समिति

1. प्राचार्य	पदेन अध्यक्ष
2. डॉ. एम. के. जैन	संयोजक
3. डॉ. आर. एस. उपाध्याय	सदस्य
4. चीफ प्रोक्टर	पदेन सदस्य

महाविद्यालय विद्युत व्यवस्था

1. डॉ. एस. के. यादव	संयोजक
2. डॉ. ए. सी. मित्तल	सदस्य

महाविद्यालय पत्रिका समिति

1. डॉ. विकास शर्मा	प्रधान सम्पादक
2. डॉ. एम. के. जैन	सम्पादन सहयोगी
3. श्री ज्ञानेन्द्र शर्मा	सम्पादन सहयोगी
4. डॉ. (श्रीमती) रानीबाला गौड़	सम्पादन सहयोगी
5. डॉ. (श्रीमती) अन्जू रस्तौगी	सम्पादन सहयोगी
6. डॉ. राजेन्द्र सिंह	सम्पादन सहयोगी

बागवानी एवम् परिसर स्वच्छता समिति

1. श्री जी. पी. शर्मा	संयोजक
2. डॉ. (श्रीमती) रानीबाला गौड़	सदस्य
3. डॉ. ए. सी. मित्तल	सदस्य
4. डॉ. विकास शर्मा	सदस्य

राष्ट्रीय सेवा योजना अधिकारी

1. श्री राजीव सिरोही	रा. से. यो. इकाई -1
2. डॉ. राजेश गर्ग	रा. से. यो. इकाई -2

महाविद्यालय फर्नीचर समिति

1.	श्री आर. सी. अग्रवाल	संयोजक
2.	डॉ. एम. के. जैन	सदस्य
3.	श्री जी. पी. शर्मा	सदस्य

एन. सी. सी. अधिकारी

1. डॉ. गौतम वीर

महाविद्यालय बिल्डिंग/भवन समिति

1.	डॉ. आर. एस. उपाध्याय	संयोजक
2.	डॉ. एम. के. जैन	सदस्य
3.	डॉ. एस. के. यादव	सदस्य
4.	डॉ. ए. सी. मित्तल	सदस्य

महाविद्यालय स्टेशनरी/कार्यालय सामग्री समिति

1.	श्री आर. सी. अग्रवाल	संयोजक
2.	डॉ. (श्रीमती) शिवरानी गर्ग	सदस्य
3.	डॉ. (श्रीमती) प्रतिभा गुप्ता	सदस्य

छात्र कल्याण एवम् महाविद्यालय विकास परिषद्

1.	प्राचार्य	पदेन अध्यक्ष
2.	डॉ. एम. के. जैन	सदस्य, क्रीड़ा परिषद्
3.	डॉ. आर. एस. उपाध्याय	सदस्य, विज्ञान संकाय
4.	श्री श्यौराज सिंह	चीफ प्रोक्टर
5.	डॉ. वी. पी. गौतम	सदस्य, कला संकाय

महाविद्यालय छात्र संघ प्रभारी

1. डॉ. आर. एस. उपाध्याय

महाविद्यालय पुस्तकालय समिति

1.	डॉ. सी. पी. गुप्त	प्राचार्य, पदेन अध्यक्ष
2.	डॉ. रामावतार शर्मा	सचिव
3.	डॉ. ए. पी. तिवारी	अध्यक्ष, रसायन विज्ञान विभाग
4.	डॉ. एम. के. जैन	अध्यक्ष, गणित विभाग
5.	डॉ. ए. के. शर्मा	अध्यक्ष, भौतिक विज्ञान विभाग
6.	डॉ. प्रतिभा गुप्ता	अध्यक्ष, इतिहास विभाग
7.	श्री श्यौराज सिंह	अध्यक्ष, शारीरिक शिक्षा विभाग
8.	डॉ. वी. पी. गौतम	अध्यक्ष, राजनीति विज्ञान विभाग
9.	डॉ. आशा रानी शर्मा	अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
10.	डॉ. राजेन्द्र सिंह	अध्यक्ष, अर्थशास्त्र विभाग
11.	डॉ. रेनू अग्रवाल	अध्यक्ष, समाज शास्त्र विभाग
12.	डॉ. अंजू रस्तौगी	अध्यक्ष, संस्कृत विभाग
13.	डॉ. विकास शर्मा	अध्यक्ष, अंग्रेजी विभाग

अनुक्रमणिका

क्र.सं		लेखक	पृष्ठ संख्या
	संस्मरण		
1.	पचास वर्ष बाद - कॉलिज की याद में	डॉ0 कमल किशोर गोयनका	(1 - 3)
2.	मेरी अन्तरंग अनुभूतियाँ	डॉ0 महावीर सरन जैन	(4 - 5)
3.	डी0ए0वी0 की याद में	डॉ0 चन्द्रपाल शर्मा	(6 - 8)
4.	अतीत के झरोखे से	डॉ0 हरीश कौशिक	(9 - 12)
5.	स्मृतियों के दीप	डॉ0 मदनपाल शर्मा	(13 - 14)
6.	The College Where I Taught Post-Graduate Classes First	Dr. Brahma Dutta Sharma	(15 - 18)
7.	स्मृति पटल से	डॉ0 सुषमा गुप्ता	(19 - 22)
8.	डी0ए0वी0 तेरे परिसर के वे दिन	डॉ0 अंशु बंसल	(23 - 24)
9.	आज भी आनन्द अभिभूत हूँ	पी0के0 सिंह	(25 - 26)
	लेख		
10.	Treatment of the World War II in Manohar Malgonkar's novel 'A Bend in the Ganges'	Dr. Vikas Sharma	(27 - 33)
11.	भारत की विदेश व्यापार नीति	डॉ0 राजेन्द्र सिंह	(34 - 41)
12.	प्राचीन भारत में सैन्य शिक्षा एवं उसका महत्व	ज्ञानेन्द्र प्रसाद शर्मा	(42 - 44)
13.	मौर्यकालीन न्यायिक पद्धति में 'साक्षी एव साक्ष्य' का महत्व	डॉ0 राजेश गर्ग	(45 - 48)
14.	Effectiveness of Poverty Alleviation Programmes in India	Dr. Indu Sharma	(49 - 54)
15.	Computers in Education – Then and Now	Dr. A. K. Sharma	(55 - 61)
16.	वर्तमान परिवेश में लड़के/लड़कियों की मिश्रिम बटालियन की आवश्यकता	डॉ0 गौतमवीर	(62 - 64)
17.	कहानी में शैली-शिल्प	डॉ0 अर्चना सिंह	(65 - 71)

अनुक्रमणिका

क्र.सं		लेखक	पृष्ठ संख्या
	संस्मरण		
1.	पचास वर्ष बाद – कॉलिज की याद में	डॉ0 कमल किशोर गोयनका	(1 - 3)
2.	मेरी अन्तरंग अनुभूतियाँ	डॉ0 महावीर सरन जैन	(4 - 5)
3.	डी0ए0वी0 की याद में	डॉ0 चन्द्रपाल शर्मा	(6 - 8)
4.	अतीत के झरोखे से	डॉ0 हरीश कौशिक	(9 - 12)
5.	स्मृतियों के दीप	डॉ0 मदनपाल शर्मा	(13 - 14)
6.	The College Where I Taught Post–Graduate Classes First	Dr. Brahma Dutta Sharma	(15 - 18)
7.	स्मृति पटल से	डॉ0 सुषमा गुप्ता	(19 - 22)
8.	डी0ए0वी0 तेरे परिसर के वे दिन	डॉ0 अंशु बंसल	(23 - 24)
9.	आज भी आनन्द अभिभूत हूँ	पी0के0 सिंह	(25 - 26)
	लेख		
10.	Treatment of the World War II in Manohar Malgonkar's novel 'A Bend in the Ganges'	Dr. Vikas Sharma	(27 - 33)
11.	भारत की विदेश व्यापार नीति	डॉ0 राजेन्द्र सिंह	(34 - 41)
12.	प्राचीन भारत में सैन्य शिक्षा एवं उसका महत्व	ज्ञानेन्द्र प्रसाद शर्मा	(42 - 44)
13.	मौर्यकालीन न्यायिक पद्धति में 'साक्षी एव साक्ष्य' का महत्व	डॉ0 राजेश गर्ग	(45 - 48)
14.	Effectiveness of Poverty Alleviation Programmes in India	Dr. Indu Sharma	(49 - 54)
15.	Computers in Education – Then and Now	Dr. A. K. Sharma	(55 - 61)
16.	वर्तमान परिवेश में लड़के/लड़कियों की मिश्रिम बटालियन की आवश्यकता	डॉ0 गौतमवीर	(62 - 64)
17.	कहानी में शैली-शिल्प	डॉ0 अर्चना सिंह	(65 - 71)

वातायन

क्र.सं.		लेखक	पृष्ठ संख्या
18.	प्रगतिवादी कवियों की काव्य-कृतियों में प्रयुक्त अलंकार योजना	डॉ0 सीमा शर्मा	(72 - 74)
19.	Hardy and R. K. Narayan's Regionalism	Mrs. Reeta Sharma	(75 - 77)
20.	महादेवी काव्य में दुःख वेदना एवं करूण	डॉ0 उर्मिला शर्मा	(78 - 80)
21.	विरह का जलजात जीवन	डॉ0 रानीबाला गौड़	(81 - 81)
22.	Feminist Concerns in Shobha De's 'SNAPSHOTS'	Ms. Monika Singh	(82 - 84)
23.	संयुक्त राष्ट्रसंघ की अधिकारिक भाषाएँ एवं हिन्दी	प्रो0 महावीर सरन जैन	(85 - 92)
24.	Emerson As Hero And His Hero–Worship	Ms. Lalita Singh	(93 - 93)

कविताएँ

25.	प्रेम की परिभाषा	डॉ0 विकास शर्मा	(94 - 94)
26.	देश अब कौन चलायेगा?	यदुनाथ 'यदु'	(95 - 95)
27.	राह भटकती ट्रेनें	डॉ0 उर्मिला शर्मा	(96 - 96)
28.	सुधियों के झरोखे से	यदु नाथ 'यदु'	(97 - 97)

वार्षिक प्रतिवेदन

29.	क्रीड़ा विभाग	(98 - 99)
30.	एन0एस0सी0	(100 - 100)
31.	एन0एस0एस0	(101 - 102)
32.	सांस्कृतिक व साहित्यिक समिति	(103 - 103)
33.	अंग्रेजी विभाग	(104 - 104)
34.	इतिहास विभाग	(105 - 105)
35.	भौतिक विभाग	(106 - 106)

पचास वर्ष बाद - कॉलिज की याद में ....

डॉ0 कमल किशोर गोयनका
(पुरातन छात्र)
पूर्व रीडर, हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

डी0ए0वी0 (पी0जी0) कॉलिज, बुलन्दशहर की स्थापना को पचास वर्ष पूरे हो रहे हैं। डॉ0 विकास शर्मा से यह जानकर थोड़ा आश्चर्य हुआ कि आधी शताब्दी व्यतीत हो गयी और मालूम भी नहीं पड़ा। डॉ0 शर्मा के पिता मेरे साथ पढ़े थे और उनसे ही उन्हें ज्ञात हुआ कि मैं डी0ए0वी0 (पी0जी0) कॉलिज की स्थापना होने पर पहले वर्ष की बी0ए0 (आर्टस्) का छात्र था। उनके फोन से तथा उनके संस्मरण लिखने के आग्रह पर पचास वर्ष पूर्व के कॉलिज के अनेक दृश्य तथा घटनाएँ मेरी आँखों के सामने झिलमिलाने लगीं। मुझे याद है कि डी0ए0वी0 इन्टर कॉलिज, बुलन्दशहर से मैनें इन्टरमीडिएट की परीक्षा सन् 1956 में उत्तीर्ण की थी। मैंने इस स्कूल में तीसरी कक्षा में सन् 1944 में दाखिला लिया था और हाईस्कूल एवं इन्टरमीडिएट की परीक्षाओं में सर्वाधिक अंक लेकर उत्तीर्ण किया था, किन्तु सन् 1956 में छात्रों के लिए कोई डिग्री कॉलिज नहीं था और खुर्जा रोज रेल से आने-जाने के कारण माता-पिता वहाँ भेजने को तैयार नहीं थे, लेकिन डी0ए0वी0 इन्टर कॉलिज के डिग्री कालिज में परिवर्तित होने की कोई सूचना न होने पर मुझे कानपुर के एक प्रतिष्ठित कॉलिज में प्रवेश लेना पड़ा। कानपुर में मेरी बड़ी बहन श्रीमती सुशीला सेक्सरिया रहती थी और मेरे बहनोई श्री नन्दनप्रसाद सेक्सरिया वहाँ जे0के0 मिल में उच्च पदाधिकारी थे। कानपुर में सम्भवतः कुछ दिन रहने पर ज्ञात हुआ कि बुलन्दशहर का डी0ए0वी0 इन्टर कॉलिज, डिग्री कॉलिज में बदल गया है और आर्टस् के कोर्स के लिए दाखिले हो रहे हैं। इस सूचना पर मैंने कानपुर का कॉलिज छोड़ दिया और बुलन्दशहर आकर डी0ए0वी0 डिग्री कॉलिज में दाखिला ले लिया। मैं आज सोचता हूँ कि मैने यदि कानपुर न छोड़ा होता तो निश्चय ही मैं वह नहीं होता जो मैं आज हूँ, क्योंकि बुलन्दशहर से बी0ए0 करके दिल्ली जाना आसान था और दिल्ली में रहकर मैं जो साहित्यिक कार्य कर पाया तथा जो मुझे प्रेमचंद पर शोध एवं समीक्षात्मक कार्यों से अंतर्राष्ट्रीय ख्याति मिली, वह सम्भव नहीं थी।

बुलन्दशहर के डी0ए0वी0 डिग्री कॉलिज का यह पहला वर्ष था, अतः पूरे शहर के छात्रों एवं परिवेश में हमें कुछ विशिष्टता का अनुभव होता था। मेरे साथ जो सहपाठी थे, उनमें डॉ0 महावीर सरन जैन, डॉ0 हरीश कौशिक, शिव कुमार (शिब्बू), कृष्ण कुमार अग्रवाल, डॉ0 रणवीर सिंह (चौधरी), डॉ0 कुसुम वर्मा आदि की मुझे स्मृति है, लेकिन कक्षा में सह-शिक्षा थी और 30-40 से कम विद्यार्थी न थे। दक्षिण भारत के एक डॉ0 नटराजन हमारे प्रिंसिपल थे, हिन्दी के शिक्षक डॉ0 हरीसिंह 'हरेन्द्र' शास्त्री थे, इतिहास के प्रोफेसर डॉ0 शर्मा (जिन्हें हम मांटेस्क्यू कहा करते) थे और राजनीति-शास्त्र के प्रोफेसर डॉ0 सक्सेना थे, जो बाद में जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली में प्रोफेसर हो गये थे और

वर्षों बाद उनसे फोन पर कई बार बातचीत हुई थी। उस समय बी0ए0 में सह-शिक्षा होना बड़ी बात थी। कक्षा में बाई ओर छात्राएँ बैठती थीं और दाई ओर छात्र बैठते थे, किन्तु छात्र-छात्राओं में परस्पर सम्वाद बहुत ही कम होता था और छात्राओं से बातचीत करने का साहस तो बहुत ही कम छात्र कर पाते थे।

अपने शिक्षकों में हिन्दी के प्रोफेसर डॉ0 हरी सिंह 'हरेन्द्र' तथा डॉ0 शर्मा की स्मृति मुझे बराबर रही। डॉ0 हरेन्द्र शास्त्री कक्षा में जिस गहरायी और तन्मयता से विद्यापति, बिहारी आदि पढ़ाते थे तथा छात्रों के साथ जो मित्रवत् व्यवहार करते थे तथा मेरे जैसे कुछ चंचल छात्रों की रमणीय जिज्ञासाओं का जिस प्रकार मृदु हास्य के साथ समाधान करते थे, वह मेरी स्मृति से कभी धुल नहीं पाया। डॉ0 हरीसिंह 'हरेन्द्र' शास्त्री एक योग्य शिक्षक थे और छात्रों की योग्यता को पहचानते थे। उन्होने एक बार कॉलिज में कवि सम्मेलन किया था और मैने जयशंकर प्रसाद बनकर उनकी 'आंसू' काव्य का पाठ किया था। डॉ0 शर्मा, जिन्हें हम 'मॉटेस्क्यू' कहते थे, इतिहास पढ़ाते थे और सदैव कक्षा में तैयारी करके आते थे। मुझे याद है, एक बार अर्द्धवार्षिक परीक्षा में उन्होंने मुझे मेरे सहपाठी महावीर सरन जैन को कुछ अधिक अंक दे दिये थे तो मैं महावीर की उत्तर पुस्तिका को लेकर उनसे मिला था और दोनों उत्तर पुस्तिकाओं को दिखाकर कहा था कि मेरा उत्तर बेहतर होने पर भी आपने कम नम्बर क्यों दिये? उनका उत्तर कुछ सन्तोषप्रद नहीं था, किन्तु अर्द्धवार्षिक परीक्षा थी, अतः मैं भी वाद-विवाद करके चुप हो गया, किन्तु मैं तथा महावीर जब दोनों प्रोफेसर हो गये तो मिलने पर इस घटना को अवश्य याद कर लेते थे। मुझे आज लगता है कि डॉ0 हरीन्द्र शास्त्री तथा डॉ0 शर्मा के व्यक्तित्व ने मुझे काफी प्रभावित किया और डॉ0 शास्त्री से तो विशेष रूप से एक शिक्षक के कर्त्तव्य, व्यवहार तथा स्वाध्याय का पाठ पढ़ा जो आज भी मेरी मदद करता है।

आज यह कहना कठिन है कि बी0ए0 के दो वर्ष कैसे व्यतीत हुए होंगे। महावीर (अब डॉ0 महावीर सरन जैन) मेरे खेल और ज्ञान दोनों के साथी थे और हम दोनों में अधिक से अधिक अंक प्राप्त करने की एक प्रतियोगिता सी रहती थी। महावीर कॉलिज और घर तक सीमित रहे, लेकिन मैं क्रिकेट की टीम में था, छात्र-यूनियन के एक पद पर था और कॉलिज के कुछ दबंग साथियों की टीम का एक सदस्य भी था। इस टीम के नायक थे शिव कुमार (शिब्बू) जो डॉ0 नगेन्द्र के रिश्तेदार थे और जिनका पिछले दिनों मद्रास में देहान्त हो गया। मैं उस समय सन्तुलन बनाकर चल रहा था। कॉलिज की पढ़ाई और परीक्षा की तैयारी निरन्तर चलती रहती थी जबकि उस समय आज की सी प्रतियोगिता नहीं थी और कैरियर के लिए पागलपन भी नहीं था। साहित्य की पुस्तकों का अभाव था और देश में साहित्य, कला संस्कृति के क्षेत्रों में क्या नया घटित हो रहा था, हम पूर्णतः अनभिज्ञ थे। मेरी दादी श्रीमती राजकुंवरि गोयनका द्वारा शीतलगंज में स्थापित श्री लक्ष्मीनारायण मन्दिर की लाइब्रेरी में अवश्य ही प्रेमचन्द की पुस्तकों तथा 'माधुरी', 'चांद', 'हंस', 'प्रभा', 'मर्यादा' आदि पत्रिकाओं से साक्षात्कार हुआ और आज महसूस करता हूँ कि डॉ0 हरीसिंह 'हरेन्द्र'

शास्त्री, अपनी माँ के साहित्य प्रेम तथा मन्दिर की लाइब्रेरी आदि ने मुझे साहित्य के संस्कार दिये और साहित्य की ओर मोड़ दिया।

बुलन्दशहर का हमारा कॉलिज नया था। अतः हमारे पहले बैच के छात्रों को खुर्जा के कॉलिज में जाकर परीक्षा देनी पड़ी। उस समय किसी एकदम नये कॉलिज को परीक्षा केन्द्र नहीं बनाया जाता था। मैं और महावीर एक ही साथ एक कमरे में ठहरे थे और दूसरे कॉलिज में जाकर परीक्षा देने में कुछ भय सा भी अनुभव होता था। परीक्षा परिणाम आया तो मैंने सर्वाधिक अंक प्राप्त किये और इतिहास में डिस्टिंगशन के अंक आये। मैं अब बीस वर्ष का होने जा रहा था और पिता के व्यवसाय में न जाने का निर्णय कर लिया था। परिवार इसके लिए तैयार नहीं था। बुलन्दशहर में पोस्ट-ग्रेजुएशन की पढ़ाई नहीं थी। महावीर इलाहाबाद जा रहा था और मैंने दिल्ली जाने का निर्णय लिया। मेरे पूर्वज मंडावा (शेखावाटी) से चलकर बुलन्दशहर आ बसे थे और जमींदार हो गये थे। मेरे दादा सेठ बद्रीदास गोयनका म्यूनिसिपिलिटी के चेयरमैन रहे थे। इन पूर्वजों से मैंने सीखा कि विस्थापन के बिना उन्नति सम्भव नहीं है। मैं बुलन्दशहर को छोड़कर दिल्ली आ गया और दिल्ली विश्वविद्यालय से हिन्दी में सन् 1961 में एम0 ए0 प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण किया और 42 वर्ष दिल्ली विश्वविद्यालय में हिन्दी पढ़ाने के बाद 2003 में सेवानिवृत्त हुआ।

आज मैं सोचता हूँ कि बुलन्दशहर के डी0ए0वी0 डिग्री कालिज ने मेरे अन्दर साहित्य के संस्कार उत्पन्न किये, अन्यथा मैं तो इतिहास में जाना चाहता था। साहित्य में रहकर मैने अभी तक 42 पुस्तके लिखी हैं तथा प्रेमचन्द पर ही मेरी 22 पुस्तकें हैं। प्रेमचंद का लगभग 1500 पृष्ठों का नया साहित्य मैने खोजा जो दुर्लभ तथा अप्राप्य था। देश-विदेश में ऐसा कोई विश्वविद्यालय नहीं है जो मेरे प्रेमचन्द सम्बन्धी शोध-कार्य से परिचित न हो। मैंने कई बार मॉरिशस, अमेरिका, इंग्लैंड, सूरिनाम आदि देशों की यात्रांए की और वहां प्रेमचन्द पर व्याख्यान दिये। मुझे इसका गर्व है कि मेरा जन्म बुलन्दशहर में हुआ तथा बी0ए0 तक की शिक्षा डी0ए0वी0 कॉलिज में प्राप्त की। मुझे विश्वास है कि डी0ए0वी0 (पी0जी0) कॉलिज से मुझसे भी श्रेष्ठ एवं योग्य छात्र शिक्षा प्राप्त करके निकले होगें। उन सबको जोड़ने की आवश्यकता है जिससे उनके अनुभवों तथा सहयोग से इस शिक्षण संस्थान का और भी विकास हो सके। मुझे बहुत अच्छा लगा कि कॉलिज ने इस ऐतिहासिक आयोजन पर याद किया। परन्तु यह क्रम निरन्तर चलते रहना चाहिए। कॉलिज का गौरव इसमें है कि वह कितने योग्य छात्र पैदा करता है और इन छात्रों का गौरव इसमें हैं कि वे अपने पूर्व कॉलिज के विकास में क्या योगदान करते हैं। हम जैसे पुराने छात्र अपनी पुस्तकें कॉलिज को देकर कम-से-कम लाइब्रेरी तो अच्छी बना सकते हैं। मैने बुलन्दशहर के गौरी शंकर कन्या महाविद्यालय को सैकड़ों पुस्तकें उपहार में दी हैं। मैं समझता हूँ, आपके कॉलिज को भी ऐसा प्रयास करना चाहिए जिससे कॉलिज आने वाली पीढ़ियों के लिए ज्ञान का वास्तविक केन्द्र बन सकें।

मेरी अन्तरंग अनुभूतियाँ .....

– महावीर सरन जैन
(पुरातन छात्र)
पूर्व निदेशक – केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा

मन इक्यावन वर्ष पूर्व की स्मृतियों में लीन हो गया है। अप्रैल 1956 का कालखंड। इण्टर की परीक्षाएँ समाप्त हो गई थीं। अगले सत्र से कहाँ पढ़ना होगा। अपने शहर को छोड़कर किसी दूसरे शहर में पढ़ने के लिए जाना होगा। नए अज्ञात अनजाने परिवेश का आकर्षण जहाँ मन को आन्दोलित करता था वहीं अपने परिवार, संगी-साथियों एवं परिचित नगर से विलग होने का अहसास मन को आशंकित एवं व्यथित करता था। ऐसी ही मनःस्थिति में एक दिन सुनने को मिला कि अगले सत्र से अपने शहर में डिग्री कॉलिज की स्थापना के प्रयास चल रहे हैं। पूरा ग्रीष्मावकाश संकल्पों-विकल्पों में व्यतीत हुआ। दुविधा, ऊहापोह, अनिर्दिष्ट, अनिश्चिय एवं अनिर्धारण की मानसिकता की अनैकांतिकता एवं अनियतता का अनुभव।

ग्रीष्मावकाश समाप्त हुआ। कॉलिज की स्थापना की सम्भावना सुखद यथार्थ में परिणत हो गई। टीन की छतों वाले, बिना दरवाजों एवं बिना प्लास्टर के दो कमरों में चार पाँच अध्यापक तथा तीस-चालीस छात्रों के साथ बुलन्दशहर में डी0ए0वी0 डिग्री कॉलिज स्थापित हो गया। मैं, कमल किशोर गोयनका, नरेश चन्द्र गुप्त, महेश चन्द्र मित्तल, सतीश कुमार चावला, प्रताप नारायण बेरी आदि कुछ छात्र डी0ए0वी0 इन्टर कालिज से डिग्री कॉलिज में पढ़ने के लिए आए थे। सम्भवतः इसी कारण हम सब उस समय आत्मसंतोष, तृप्ति, तोष, प्रसन्नता एवं आनन्द की आत्मिक तरंगों में ठीक वैसे ही आप्लावित हो रहे थे जैसे कोई नया चितेरा अपने चित्रांकन में अपनी अंतरंग अनुभूतियों को भले ही साकार करने में असमर्थता एवं विवशता का तो बोध करता है किन्तु रचना के आदिकाल में आड़ी तिरछी रेखाओं में बने बिम्ब की साकार अनुभूति से पुलक उठता है।

इस समय अनेक स्मृतियाँ सजग एवं सचेष्ट होकर शब्दों में आकार एवं विस्तार पाने के लिए लालायित हैं। मगर समय की सीमा है, स्थान एवं जगह की सीमा हैं, मेरी अभिव्यक्ति- सामर्थ्य की सीमा है। आत्मसंयम, आत्मनियंत्रण, आत्मानुशासन एवं आत्मनिग्रह की मर्यादा में अपने को बाँधना होगा। इतना अवश्य निवेदित करना चाहता हूँ कि जो यादें ताजा हो रही हैं, उनमें कहीं भी हीनता अथवा अवमानकता का अहसास नहीं है अपितु उनमें नवसृजन एवं नव निर्माण के अभियान, प्रयाण, उपक्रम, उद्यम एवं प्रयास का उत्साह, उल्लास एवं आनन्द-भाव समाहित हैं।

डॉक्टर एम0 एस0 नटराजन की प्राचार्य के रूप में प्रशासनिक दक्षता, प्रो0 रघुनन्दन शर्मा के आत्मीय-व्यवहार, प्रो0 हरी सिंह 'हरीन्द्र' के विद्यार्थियों में घुलमिल जाने के सहज स्वभाव, प्रो0 कृष्ण प्रसाद सक्सेना के छात्रसंघ एवं महाविद्यालयीन विविध कार्यक्रमों को

गरिमापूर्ण क्रियान्वित एवं निष्पादित करने की लालसा आदि ने समन्वित रूप में जहाँ हमारे नवजात महाविद्यालय को एक ओर आत्मीय परिवेश प्रदान किया वहीं दूसरी ओर महाविद्यालयीन गौरवपूर्ण परम्परा की आधारशिला रखी।

छात्रसंघ की कार्यकारिणी के सदस्यों में अपने साधनविहीन महाविद्यालय को प्रतिष्ठित करने की ललक थी। इसी प्रसंग में मेरे मानस में 'रामचरितमानस' के लंका कांड की "रावनु रथी बिरथ रघुवीरा ....." पंक्तियाँ गूँज रही हैं। रावण समस्त साधनों से सम्पन्न रथ पर आरूढ़। राम भौतिक साधनों से रहित बिना रथ के। इस स्थिति को देखकर विभीषण अधीर हो उठते हैं। किन्तु युद्ध में विजय 'रथी रावण की नहीं, बिरथ रघुवीर' की होती है। इस कारण विजय होती है क्योंकि

"सोरज धीरज तेहि रथ चाका। सत्यशील दृढ़ ध्वजा पताका।।

बल विवेक दम परहित घोरे। क्षमा कृपा समता रजु जोरे।।

ईस भजनु सारथी सुजाना। बिरति चर्म संतोष कृपाना।।

दान परसु बुधि सक्ति प्रचंडा। बर विज्ञान कठिन कोदंडा।। ....."

मेरा उद्देश्य अपने तथा कार्यकारिणी के अपने साथियों को 'रामतुल्य' स्थापित करना नहीं है। तात्पर्य केवल इतना है कि मन में यदि उत्साह, प्रेरणा, उमंग हो तो उसके सामने भौतिकवादी साधनों की उपयोगिता, महत्व एवं सार्थकता कम हो जाती है। छात्रसंघ की कार्यकारिणी में मेरे अतिरिक्त देवेन्द्र कुमार शर्मा, नरेश चन्द्र गुप्त, कमलकिशोर गोयनका, जगदीश प्रसाद गुप्त, हरीकांत श्रोत्रिय, गुरबचन सिंह अरोड़ा, के0के0 अग्रवाल, घनश्याम सिंह, जगदीश प्रसाद नारायण, महेशचन्द्र मित्तल एवं अजीत पाल सिंह आदि की निष्ठा एवं सक्रियता की अनेक यादे ताजा हो रही हैं। इन यादों को लिपिबद्ध करने का कोई उपक्रम नहीं कर रहा हूँ। केवल इतना व्यक्त अवश्य करना चाहता हूँ कि जब युवा शक्ति में परस्पर सौहार्दपूर्ण एकजुटता आ जाती है तो उसके सामने साधनों की सीमा बौना सिद्ध हो जाती है। जिस प्रकार मुझे अपने डिग्री कालिज की आधारशिला में सहभागी होने का गर्व एवं अभिमान था, उसी प्रकार की भावचेतना मेरे सभी साथियों में अनुस्यूत थी - यह बात आज मैं विश्वास के साथ कह पा रहा हूँ।

आज महाविद्यालय की स्थापना की अर्ध शती है। मेरे साहित्यिक एवं शोधपरक लेखन-कर्म की भी अर्ध शती है। कॉलिज की पत्रिका में मेरी भावपूर्ण साहित्यिक रचना 'प्रतीक्षा' तथा शोधपरक आलेख 'संगीतज्ञ सूरदास' का प्रकाशन हुआ था।

मेरी कामना है कि महाविद्यालय के प्रवर्तमान प्राध्यापक एवं छात्र-छात्राएँ मिलजुलकर महाविद्यालय को एक पारिवारिक इकाई की अर्थवत्ता प्रदान करते रहें तथा प्रबन्धक-गण इसके विकास के नए आयामों का साकार मूर्त रूप प्रदान करते रहें।

डी0 ए0 वी0 की याद में .....

डॉ0 चन्द्रपाल शर्मा
(पुरातन छात्र)
पूर्व रीडर व हिन्दी विभागाध्यक्ष
राणा स्नातकोत्तर महाविद्यालय, पिलखुवा (गाजियाबाद)

देखते-देखते ही पचास वर्ष बीत गए। जुलाई सन् 56 ई0 में हमारा एक स्वप्न पूरा हो गया था। हमारे नगर में भी डिग्री कालिज है, हमें इस बात को सुनकर गर्व का अनुभव होने लगा। आज के छात्र इस भाव की अनुभूति नहीं कर सकते क्योंकि अब तो जहाँ नगर में ही चार कॉलिज हैं, वहाँ जनपद के कस्बे और गांवों में जगह-जगह कॉलिज हैं। उस समय नगर में कॉलिज 'नदीदी का गुड़' था। पाँच विषयों में बी0ए0 प्रथम वर्ष की कक्षाएं प्रारम्भ हुई।

शिक्षा के प्रति उस समय प्रबुद्ध लोगों में कितना सम्मान था, उसका अनुमान आज के नवयुवक नहीं लगा सकते। आज के वित्तविहीन कॉलिजों में मोटी फीस के बाद भी शिक्षक कितने अल्पवेतन भोगी हैं, यह सर्वविदित तथ्य है। उस समय भी कॉलिज कम से कम तीन वर्ष वित्तविहीन रहते थे। फिर थोड़ी सी सरकारी सहायता राशि मिलनी प्रारम्भ होती थी। किन्तु प्रबन्ध तंत्र अपने शिक्षकों-कर्मचारियों को उतना ही वेतन देते थे, जितना सरकार द्वारा निर्धारित था।

डी0ए0वी0 के प्रबन्ध तंत्र ने योग्य से योग्यतम शिक्षकों को नियुक्त किया था। ख्यातिप्राप्त अर्थशास्त्री डॉ0 एम0 एस0 नटराजन पहले प्राचार्य बने। हिन्दी विभागाध्यक्ष के रूप में हिन्दी व संस्कृत के उद्भट विद्वान डॉ0 हरीन्द्र शास्त्री ने कार्यभार ग्रहण किया जो बाद में जनता वैदिक कॉलिज, बड़ौत के प्राचार्य के रूप में सेवानिवृत्त हुए। राजनीति शास्त्र के विभागाध्यक्ष के रूप में डॉ0 के0 पी0 सक्सेना मेरठ कॉलिज मेरठ छोड़कर आए, जो बाद में जे0एन0यू0 में प्रोफेसर, निदेशक आदि पदों पर रहते हुए अन्तरराष्ट्रीय ख्याति के विद्वान् माने गए। डॉ0 रघुनन्दन शर्मा इतिहास विभाग के अध्यक्ष बने जो बाद में इस कॉलिज के अनेक वर्षों तक प्राचार्य रहे। डॉ0 एस0 के0 शर्मा अर्थशास्त्र विभागाध्यक्ष बनकर आए जो बाद में हिमाचल विश्वविद्यालय में रीडर बनकर चले गए। अंग्रेजी विभाग में किसी विश्वविद्यालय के सेवानिवृत्त प्रोफेसर पौराणिक विभागाध्यक्ष थे, जिन्हें हम छात्र डैडी कहते थे। ये अंग्रेजी व संस्कृत के प्रकांड् विद्वान थे।

मैं जुलाई 57 में महाविद्यालय का छात्र बना अर्थात् कॉलिज स्थापना के दूसरे वर्ष मुझे बी0 ए0 प्रथम वर्ष में आने का सौभाग्य मिला। प्रबन्ध तंत्र ने छात्रों को उत्तम से उत्तम शिक्षा देने के उद्देश्य से सभी विषयों में एक-एक अन्य प्राध्यापकों की नियुक्ति की। हिन्दी में पं0 श्रीराम शर्मा, राजनीति शास्त्र में चौ0 हरलाल सिंह हमारे लिए पूर्व परिचित थे

क्योंकि ये डी0 ए0 वी0 इण्टर कालिज से इधर आए थे। अंग्रेजी में डॉ0 बी0 के0 कंसल आए जो बाद में हिन्दू कालिज, मुरादाबाद में अंग्रेजी विभागाध्यक्ष बने। इसी विभाग में डॉ0 मिथन सिंह आए जो बाद में कृषक कॉलिज, मवाना के प्राचार्य होकर चले गये। बाद में विभागाध्यक्ष के रूप में डॉ0 महाराज सिंह आए जो राणा शिक्षा शिविर स्नातकोत्तर कॉलिज, पिलखुवा के प्राचार्य बने किन्तु एक वर्ष बाद स्वेच्छा से पुनः डी0 ए0 वी0 में ही लौट आए। अर्थशास्त्र में जो प्राध्यापक आए थे उनका नाम स्मरण नहीं क्योंकि वे शीघ्र ही किसी बड़े कॉलिज में चले गये थे। इस सब को लिखने का उद्देश्य यह है कि उस समय प्रबन्ध तंत्र कितने योग्य व्यक्तियों को चुन-चुनकर प्राध्यापक बनाता था।

कॉलिज के प्रथम प्राचार्य दक्षिण भारतीय थे। उनका हिन्दी भाषा का ज्ञान लगभग शून्य था। विद्यार्थियों व प्रबन्ध तंत्र दोनों को ही इस कमी से परेशानी थी। अतः दो वर्ष बाद डॉ0 एम0एस0 नटराजन कॉलिज छोड गए। उनके बाद प्राचार्य बनकर आए डॉ0 लाल बहादुर। ये उस समय इतिहास में पी0-एच0डी0 तथा राजनीति शास्त्र में आगरा वि0वि0 के प्रथम डी0 लिट्0 थे। इस समय तक कॉलिज इण्टर कॉलिज द्वारा दिये गए टीन के कमरों में चलता था। जिसे डॉ0 एम0 एस0 नटराजन 'कैटिल शेड' कहते थे। डॉ0 लाल बहादुर के आते ही कॉलिज को नया भवन मिला। वर्तमान प्राचार्य कार्यालय के सामने वाले पाँच कमरे पाकर हम लोग प्रसन्न थे। इसी वर्ष कालिज परीक्षा केन्द्र बन गया। अन्यथा पहले वर्ष की परीक्षा देने हम एन0 आर0 सी0 कॉलिज, खुर्जा गए थे। नूतन सत्र 1959 कॉलिज के इतिहास में सबसे महत्वपूर्ण वर्ष बनकर आया। पाँचों विषयों में एम0 ए0 कक्षाएँ खुल गई थीं। अब हमारे गुरूजन गम्भीर अध्ययन-अध्यापन में लग गए थे।

उस समय विद्यार्थी संख्या बहुत सीमित होती थी। अतः एम0 ए0 के प्रथम वर्ष में हम छह छात्र थे। एम0 ए0 की कक्षाएं प्रातः 7 से 10 तक होती थी। किन्तु हमारे गुरूजी डॉ0 हरीन्द्र शास्त्री बारह बजे तक पढ़ाते रहते थे। रविवार अथवा अन्य छुट्टियों में प्रायः कक्षा चलती थी। छह छात्र व शास्त्री जी एकदम पारिवारिक वातावरण होता था। छात्रों को यह ध्यान था कि इस कॉलिज के वे सौभाग्यशाली छात्र हैं जिनको सबसे पहले एम0ए0 कक्षाओं में बैठने का अवसर मिला है। सन् 61 में कॉलिज का पहला बैच निकला। इस सत्र के छात्रों में से मदनपाल शर्मा ने अर्थशास्त्र में विश्वविद्यालय में प्रथम स्थान पाया और डी0ए0वी0 कॉलिज में ही प्राध्यापक बन गए। इन पंक्तियों के लेखक को भी राणा शिक्षा शिविर डिग्री कॉलिज धौलाना (वर्तमान में राणा स्नातकोत्तर कॉलिज, पिलखुवा) में प्राध्यापक के पद पर नियुक्ति मिल गई। इसी सत्र में एम0ए0 हिन्दी करने वाली कुसुम लता वर्मा भी कुछ वर्ष बाद रूड़की के एक महाविद्यालय में प्राध्यापक बनीं। अर्थशास्त्र से एम0ए0 करने वाले सूरजभान मध्यप्रदेश के किसी महाविद्यालय में प्राध्यापक नियुक्त होकर चले गए। राजनीति शास्त्र के हरीश रावत सेना में लेफ्टीनेंट बने। कुछ अन्य छात्र भी अच्छे पदों पर चले गए। आशय यह है कि महाविद्यालय ने प्रथम वर्ष से ही अपने छात्रों को सम्मानित पद दिलाए।

छोटा सा महाविद्यालय था किन्तु सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रारम्भ से ही बहुत स्तरीय होते थे। जब हम बी0ए0 द्वितीय वर्ष में थे, तो कॉलिज का प्रथम दीक्षान्त समारोह हुआ। बहुत ही भव्य आयोजन था। इस वर्ष उपाधि लेने वाले वे छात्र थे, जिन्होने कॉलिज से पहले बैच में बी0ए0 किया था। इन छात्रों को इस महाविद्यालय से एम0ए0 करने का सुअवसर नहीं मिल सका था। इन छात्रों में दो का उल्लेख करना आवश्यक समझता हूँ। भाई महावीर सरन जैन ने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से एम0ए0 हिन्दी किया। जबलपुर वि0वि0 में प्रोफेसर व विभागाध्यक्ष बने। इसी बैच में कमल किशोर गोयनका थे जो दिल्ली वि0वि0 में प्राध्यापक हुए। वे आज प्रेमचन्द साहित्य के अधिकारी विद्वान् हैं। डॉ0 जैन आगरा के भाषा संस्थान के निदेशक भी रहे और अनेक देशों की यात्रा की। कॉलिज में वादविवाद प्रतियोगिताओं का आयोजन होता था। इसमें कॉलिज ने अनेक कीर्तिमान स्थापित किए। आगरा वि0वि0 की महत्वपूर्ण वाद विवाद प्रतियोगिता में प्रथम स्थान पाकर पन्नालाल ट्राफी डिबेट पर कब्जा किया। कुसुमलता वर्मा व हरीश रावत विजयी टीम के सदस्य थे। इन दोनों को इस स्तर का वक्ता क्रमशः डॉ0 हरीन्द्र शास्त्री व डॉ0 के0पी0 सक्सेना ने बनाया। हल्दीघाटी के रचयिता श्यामनारायण पाण्डेय की ओजस्वी वाणी में हल्दीघाटी का काव्यपाठ कॉलिज प्रांगण में ही सुना था। समय-समय पर बाहर से आए विद्वानों के भाषण हमें सुनने को मिलते थे। जब नया हॉल बन गया तो उसमें एक महत्वपूर्ण कार्यक्रम 'मॉक पार्लियामेंट' का हुआ। डॉ0 लाल बहादुर स्पीकर थे। डॉ0 के0 पी0 सक्सेना प्रधानमंत्री थे। डॉ0 हरीन्द्र शास्त्री विपक्ष के नेता थे। अन्य प्राध्यापक मंत्री थे। मैंने संसद में बैठकर संसद की कार्यवाही नहीं देखी है। दूरदर्शन पर ही संसद के दृश्य देखे हैं किन्तु अपने कॉलिज की संसद के जीवन्त दृश्य आज भी याद हैं। जिस समय प्रधानमंत्री व नेता विपक्ष स्पीकर की कुर्सी तक डॉ0 लाल बहादुर को ले गए और उनका पूर्व प्राचार्य के रूप में परिचय कराया तो रोमांच हो उठा।

डी0ए0वी0 का वह पौधा आज विशाल वट वृक्ष है। आज अनेक विषयों में अध्यापन व शोध कार्य हो रहा है। मैं जिस किसी भी प्रसंग में महाविद्यालय आता हूँ यह मुझे अपना लगता है। इस महाविद्यालय के प्राध्यापकों में से अनेक मेरे बालकों की आयु के हैं। किन्तु मैं सभी के प्रति गुरूभाव रखता हूँ। सोचता हूँ जिन कक्षों में मैं विद्यार्थी के रूप में बैठा करता था, उन कक्षों में ये प्राध्यापक के रूप में विद्यादान करते हैं। अतः सभी के प्रति श्रद्धा भाव रखता हुआ, ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि यह महाविद्यालय ज्ञान की ज्योति को जलाता रहे। इसके प्राध्यापक व छात्र देश के निर्माण में अपना अमूल्य योगदान देते रहें। साथ ही अकादमिक क्षेत्र में अपने-अपने विषयों में कीर्तिमान स्थापित करते रहे।

सम्पर्क सूत्र :
सहयोग,
सर्वोदय नगर, पिलखुवा (गाजियाबाद)

अतीत के झरोखे से

– डॉ0 हरीश कौशिक,
(पुरातन छात्र)
सेवानिवृत्त रीडर व अध्यक्ष, राजनीति शास्त्र विभाग,
अमर सिंह स्नात्कोत्तर कालिज, लखावटी

1956 से पूर्व जनपद बुलन्दशहर में मात्र दो डिग्री कालिज थे। ग्रामीण क्षेत्र K.E.M.U. में जाट कालिज लखावटी (1941 में कला व कृषि संकाय में) और नगर खुर्जा में N.R.E.C. कालिज (1943 में स्थापित)। ये दोनों कॉलिज आगरा विश्वविद्यालय से सम्बद्ध थे। आगरा विश्वविद्यालय में आगरा, मेरठ, बरेली और कानपुर मण्डल के कॉलिज आते थे। बुलन्दशहर नगर के डी0ए0वी0 डिग्री कॉलिज की स्थापना 1956 में तत्कालीन जिलाधिकारी श्री ज्ञान प्रकाश, राजनेता एवं उत्तर प्रदेश शासन में मन्त्री श्री बनारसीदास, कालिज प्रबन्ध तन्त्र के सचिव श्री हजारी लाल गर्ग और आगरा विश्वविद्यालय के कुलपति श्री कालका प्रसाद भटनागर के प्रयासों से हुई। ई 0ए0वी0 इन्टर कॉलिज परिसर में स्थित जूनियर कक्षाओं के कुछ कक्ष, टेलरिंग व बुकक्राफ्टिंग के भवनों को लेकर डिग्री कालिज का एक छोटा सा परिसर बनाया गया। छोटे आकार के कमरों में प्राचार्य कक्ष, कार्यालय, पुस्तकालय, स्टाफ रूम, छात्राओं के लिए अलग शिक्षण कक्ष व कॉमन रूम तथा शिक्षण के लिए बड़े तीन कक्ष बी0ए0 के पाँच विषयों – हिन्दी, अंग्रेजी साहित्य, राजनीति विज्ञान, अर्थशास्त्र और इतिहास के लिए क्रमशः प्रो0 एच0 एस0 हरीन्द्र, प्रो0 जी0 एन0 पुराणिक, प्रो0 कृष्ण प्रसाद सक्सैना, डॉ0 एम0 एस0 नटराजन (प्राचार्य) और प्रो0 रघुनन्दन शर्मा जैसे विद्वान एवं अनुभवी शिक्षकों का चयन हुआ। बाद में पण्डित श्रीराम शर्मा (हिन्दी), चौधरी हरलाल सिंह (राज0 वि0) और प्रो0 बालकृष्ण कंसल (अंग्रेजी) प्राध्यापक मण्डल में सम्मिलित हो गये। जुलाई/अगस्त 1956 में बी0 ए0 प्रथम वर्ष की कक्षाएं प्रारम्भ हो गई और डी0ए0वी0 डिग्री कॉलिज अस्तित्व में आया।

मैंने वर्ष 1956 में डी0ए0वी0 इन्टर कॉलिज से इन्टर परीक्षा उत्तीर्ण की और जनपद के गुलावठी कस्बे में स्थित इण्टर कालिज में सहायक अध्यापक (संगीत) हो गया। कुछ माह शिक्षण कार्य कर मैने वहां से त्यागपत्र दे दिया और कॉलिज में प्रवेश के लिए गया परन्तु विश्वविद्यालय के कठोर नियमों और शिक्षण सत्र प्रारम्भ होने के कारण मुझे अपने साथियों के साथ अध्ययन से वंचित होना पड़ा। अतः जुलाई 1957 में हिन्दी, अंग्रेजी साहित्य, राजनीति विज्ञान तथा सामान्य अंग्रेजी (अनिवार्य) विषयों के साथ मैं कॉलिज का छात्र बन गया, तब तक मेरे साथी बी0ए0 द्वितीय वर्ष के विद्यार्थी बन गये थे। तथापि जूनियर-सीनियर के भेदभाव बिना छात्रों में स्नेह, सद्भाव व सहयोग की भावना थी। सहशिक्षा नहीं थी। छात्राओं के लिए अध्यापन की पृथक व्यवस्था थी। प्राचार्य नटराजन प्रख्यात अर्थशास्त्री, पत्रकार एवं कुशल प्रशासक थे। दक्षिण भारतीय होने के कारण उन्हें

हिन्दी नहीं आती थी। अंग्रेजी साहित्य के अध्यक्ष पौराणिक साहब भारत के विभिन्न विश्वविद्यालयों तथा ऑक्सफोर्ड में अध्यापन के बाद सेवानिवृत हो चुके थे, परन्तु प्रबन्ध तन्त्र की संस्तुति पर कुलपति ने विशेष परिस्थिति में दो वर्षों के लिए उनकी नियुक्ति को स्वीकृति दी। विद्वान् और अनुभवी शिक्षकों ने हमें भावी पीढ़ी के रूप में ढालने का प्रयास किया।

कॉलिज में छात्र-संघ चुनाव भी होते थे किन्तु उनके कार्यकाल में रचनात्मक कार्यों के लिए प्राथमिकता थी। प्रोफेसर इंचार्ज के निर्देशन में छात्रसंघ पदाधिकारी कवि सम्मेलन, संगीत सम्मेलन, वाद-विवाद प्रतियोगिता, निर्धन छात्र कोष (फिल्म-शो और चन्दे द्वारा एकत्रित धन से) संचालन आदि कराते थे। इन्टर कॉलिज परिसर में छात्र संघ द्वारा दिसम्बर 1957 में कवि सम्मेलन में कवि नीरज को सुनने का अवसर मिला। पहली उनकी कविता अंग्रेजी में थी। फरवरी 1958 में जिला औद्योगिक एवं कृषि प्रदर्शनी में आयोजित कवि सम्मेलन में मैथिलीशरण गुप्त, रामधारी सिंह दिनकर, महादेवी वर्मा, सोहनलाल द्विवेदी, डॉ0 रामकुमार वर्मा, डॉ0 हरिवंश राय बच्चन, काका हाथरसी, श्यामनारायण पांडे, बेढब बनारसी, रमानाथ अवस्थी, गोपालदास नीरज जैसे लोकप्रिय और विख्यात कवि सम्मिलित हुए थे। अगले दिन कॉलिज के छात्र डॉ0 रामकुमार वर्मा और वीर रस कवि श्यामनारायण पाण्डे को कॉलिज में लाने में सफल रहे। उनसे कविताएं सुनी गयी और ओटोग्राफ लिये गये।

कॉलिज स्थापना के प्रथम दो वर्षों में छात्र/छात्राओं को विश्वविद्यालय की वार्षिक परीक्षाओ के लिए N.R.E.C. College खुर्जा केन्द्र पर परीक्षा देनी पड़ी। मार्च/अप्रैल 1959 में कॉलिज परीक्षा केन्द्र बना। 1958 में कॉलिज नये परिसर में शिफ्ट कर दिया गया। नये सत्र में डॉ0 लाल बहादुर नये प्राचार्य नियुक्त हुए। नये प्राध्यापकों में प्रो0 महाराज सिंह, प्रो0 मिथन सिंह (अंग्रेजी विभाग), डॉ0 हरी सिंह (हिन्दी विभाग), प्रो0 कृष्ण स्वरूप शर्मा (अर्थशास्त्र विभाग), प्रो0 सीता राम महरोत्रा (अर्थशास्त्र विभाग), और डॉ0 निगम (राजनीति शास्त्र) थे। डॉ0 लाल बहादुर को उसी वर्ष डी0 लिट् की उपाधि से अलंकृत किया गया। वे इतिहास व राजनीति शास्त्र विषयों के विद्वान् माने जाते थे। उनके शोध कार्य को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मान्यता मिली। 1959 में उन्होंने कॉलिज में पांच विषयों (हिन्दी, अंग्रेजी, अर्थशास्त्र, इतिहास और राजनीति शास्त्र) में स्नातकोत्तर कक्षाएं प्रारम्भ करा दीं और नये उच्चतर शैक्षिक वातावरण के लिये पृष्ठभूमि तैयार की। मेरे बी.ए. के साथी विभिन्न विषयों में से एक विषय चुनकर एम.ए. के छात्र बन गये।

छात्र जीवन के मेरे चार वर्ष (1957-1961) इस कॉलिज में व्यतीत हुए जहां बहुत कुछ सीखने को मिला। विश्वविद्यालय की परीक्षाओं से पूर्व गृह-परीक्षाएं होती थीं जिनमें छात्र/छात्राओं द्वारा किये अध्ययन का आकलन होता था। प्राध्यापकों द्वारा जांची गई उत्तर

पुस्तिकाओं को आवश्यक निर्देश के साथ छात्र/छात्राओं को वापस दे दिया जाता था जिसमें वे सुधार कर सकें। वाद-विवाद प्रतियोगिताएं प्रत्येक सप्ताह में एक दिन आयोजित होती थीं। वक्ताओं में प्रमुख हरीश रावत, कुसुम लता वर्मा और हरिकान्त श्रोत्रिय होते थे। इन्होंने विश्वविद्यालय स्तर पर भी अपनी पहचान बनायी और अनेक पुरस्कार व शील्ड प्राप्त कर कॉलिज को गौरवान्वित किया। एम.ए. स्तर पर सेमिनार होते थे। विश्वविद्यालयों के विद्वान् प्राध्यापकों को आमंत्रित कर उनके लेक्चर कराये जाते थे। प्रो0 मुकुट बिहारी लाल (आचार्य नरेन्द्र देव के सहयोगी), डॉ0 एम.एल. श्रीवास्तव (प्रसिद्ध इतिहासकार), प्रो0 आर.एस. यादव (समाजशास्त्री) आदि के उद्‌बोधन से कॉलिज के छात्र/छात्राऐं लाभान्वित हुए। कॉलिज पत्रिका नियमित रूप से निकलती थी, जिसमें उच्च स्तर के विभिन्न विषयों पर लेख संकलित थे। मुझे भी इस पत्रिका के लिए लगातार दो वर्ष तक छात्र सम्पादक के रूप में कार्य करने का अवसर मिला। कॉलिज प्राध्यापकों द्वारा Study Circle का गठन हुआ, जिसमें कॉलिज प्राध्यापक, छात्र/छात्राओं के अतिरिक्त नगर के सम्भ्रान्त नागरिकों व बुद्धिजीवियों का भी सहयोग रहता था। नियमित रूप से इसकी पाक्षिक बैठकों में विभिन्न विषयों पर विचार विमर्श होता था। प्रो0 के0 पी0 सक्सैना इसके संयोजक और मैं उपसंयोजक के रूप में कार्य करते थे। सितम्बर 1960 में कॉलिज के छात्र/छात्राओं द्वारा संयुक्त राष्ट्रसंघ की सुरक्षा परिषद का Mock Session राजकीय इण्टर कालिज (वर्तमान में रा0 कन्या इन्टर कॉलिज) में किया गया। जिसमें कोरिया समस्या पर बहस हुई। तत्कालीन जिलाधिकारी श्री ए0के0 सिंह ने जो कोरिया युद्ध में संयुक्त राष्ट्र की शान्ति सेना के रूप में सैन्य अधिकारी रह चुके थे, अपने संस्मरण सुनाये। राजकीय इन्टर कॉलिज के प्राचार्य एवं प्रसिद्ध इतिहासकार डॉ0 सैयद अहमद अब्बास रिजवी, प्रो0 लाल बहादुर, प्रो0 के0 पी0 सकसेना और प्रो0 रघुनन्दन शर्मा ने कोरिया समस्या पर अपने विचार व्यक्त किये। मैंने अक्टूबर 1960 में आगरा विश्वविद्यालय द्वारा नैनीताल में आयोजित Youth Festival शास्त्रीय गायन में कॉलिज की ओर से मेरठ मण्डल का प्रतिनिधित्व किया। मेरठ, आगरा, बरेली और कानपुर मण्डल के सभी कॉलिज आगरा विश्वविद्यालय से सम्बद्ध थे। जनवरी 1961 में कालिज के प्राध्यापकों के सहयोग से लोकसभा का Mock Session किया गया। नवनिर्मित कॉलिज हाल में यह प्रथम आयोजन था।

1961 में कालिज छोड़ने और महाविद्यालयों में अध्यापन कार्य करने के दौरान डी0ए0वी0 कालिज परिवार से अनेक वर्षों तक मेरा सम्पर्क बना रहा। मेरे सहपाठियों द्वारा गठित Youth Club की गतिविधियों में कालिज के छात्र व प्राध्यापक साहित्यिक, राजनैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक विषयों पर विचार विमर्श करते रहे। 1962 (अगस्त) में राजनीति विज्ञान के अध्यक्ष, प्रो0 के0 पी0 सक्सैना 'संयुक्त राष्ट्र की सुरक्षा परिषद में सामूहिक सुरक्षा' विषय पर शोध के लिए Reckfellor Foundation Scholarship पर न्यूयार्क चले गये। बाद में उन्होने सं0 रा0 संघ में भारत का प्रतिनिधित्व भी किया और

कुछ समय न्यूयार्क विश्वविद्यालय में अध्यापन कार्य भी। 1972 में वे जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली में प्राध्यापक नियुक्त हो गये। 1980 में डी0ए0वी0 कॉलिज में राजनीति विज्ञान के राष्ट्रीय सम्मेलन में अपने सहयोगियों के साथ सम्मिलित हुए। तब तक वे School of International Studies में प्रोफेसर व अध्यक्ष बन चुके थे। जून 2004 (देहावसान) तक मेरा उनसे निरन्तर सम्पर्क बना रहा था।

मेरे छात्र जीवन के प्राध्यापकों ने अपने better career के लिए कॉलिज छोड़ना प्रारम्भ किया। 1961 में प्रो0 मिथन सिंह कृषक डिग्री कॉलिज, मवाना में प्राचार्य पद पर नियुक्त हुए। 1962 में प्रो0 के0 पी0 सक्सेना अमेरिका चले गये। डॉ0 हरीन्द्र शास्त्री पहले लाजपत राय कालिज, साहिबाबाद (गाजियाबाद) फिर जनता वैदिक कॉलिज, बड़ौत के प्राचार्य बने। डॉ0 कृष्ण स्वरूप शर्मा शिमला विश्वविद्यालय (हिमाचल प्रदेश) और फिर मणिपुर विश्वविद्यालय में प्रोफेसर नियुक्त हुए। प्रो0 रघुनन्दन शर्मा ने इसी कॉलिज के प्राचार्य के रूप में कार्य किया। प्रो0 बी0 के0 कंसल वर्धमान कालिज, बिजनौर के प्राचार्य बने। मेरे साथियों में डॉ0 राधेश्याम बन्सल, डॉ0 महावीर सरन जैन, डॉ0 कमल किशोर गोयनका, डॉ0 चन्द्रपाल शर्मा, डॉ0 ब्रहमदत्त शर्मा, डॉ0 मदनपाल शर्मा, हरीश रावत प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं। डॉ0 बन्सल कानपुर विश्वविद्यालय के कुलसचिव रहे हैं। डॉ0 जैन, डॉ0 गोयनका, डॉ0 चन्द्रपाल शर्मा का हिन्दी साहित्य के लिए महत्वपूर्ण योगदान है। डॉ0 बी0 डी0 शर्मा ने अंग्रेजी साहित्य के लिए योगदान किया है। डॉ0 जैन केन्द्रीय हिन्दी संस्थान आगरा में निदेशक पद से, डॉ0 गोयनका दिल्ली विश्वविद्यालय में प्रोफेसर पद से, डॉ0 शर्मा आर0 एस0 एस0 स्नातकोत्तर कालिज, पिलखुवा (गाजियाबाद) के रीडर एवं अध्यक्ष पद से, डॉ0 ब्रहमदत्त प्रोफेसर, कुमाऊं विश्वविद्यालय, नैनीताल, डॉ0 मदनपाल शर्मा, प्राचार्य, एन0 ए0 एस0 कॉलिज, मेरठ से सेवानिवृत हुए हैं। मेरे साथियों में हरीश रावत सैन्य अधिकारी, विजय सिंह, इन्टर कॉलिज, लखावटी प्राचार्य, ऋषिराम गोयल रिजर्व बैंक आफ इण्डिया, नई दिल्ली में अधिकारी पद पर कार्य कर चुके हैं। कृष्णराव सिंह (सुपुत्र चौ0 शिकारपुर) जिन्हें Andrews के नाम से जाना जाता था, शिकारपुर नगरपालिका के अध्यक्ष रह चुके हैं। अनेक साथियों ने विभिन्न व्यवसाय चुनकर अपनी जीविका चलाई है। कई वकील बन गये जिनमें एस0 एन0 शांडिल्य, महेश मित्तल, जंगबहादुर, विष्णुशंकर, मनमोहन सकसैना, राजवीर सिंह शर्मा ने ख्याति व लोकप्रियता प्राप्त की है। कॉलिज के मेरे गुरूजन और सहपाठी सेवानिवृत या दिवंगत हो चुके हैं। किन्तु इनके साथ के पांच दशकों की स्मृतियां अभी भी जीवन्त हैं। अतीत में व्यतीत दिन विस्मृत नहीं किये जा सकते।

स्मृतियों के दीप ......

डॉ0 मदनपाल शर्मा
(पुरातन छात्र)
पूर्व प्राचार्य, एन0ए0एस0 कॉलिज, मेरठ

डी0ए0वी0 स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बुलन्दशहर में वर्ष 1957 से वर्ष 1961 तक बी0 ए0 एवं एम0 ए0 का छात्र रहा। वर्ष 1961 में मैं एम0 ए0 (उत्तरार्द्ध) अर्थशास्त्र का छात्र था। शिवपुरी में स्वर्गीय मास्टर नित्यानन्द जी की कोठी में एक कमरा किराये पर ले रखा था। मेरे साथ मेरे मित्र हिन्दी के छात्र चन्द्रपाल शर्मा भी उसी कमरे में रहते थे। हम दोनों की खूब पटती थी। हम दोनों में अधिकाधिक पढ़ने की पारस्परिक प्रतियोगिता रहती थी। खाना, सोना और पढ़ना यही हमारी दिनचर्या थी। डॉ0 हरेन्द्र शास्त्री, जो बड़ौत प्राचार्य होकर चले गये थे, हिन्दी के विभागाध्यक्ष थे, जो शरीर व मस्तिष्क से हृष्टपुष्ट थे। उन्होने मुझसे एम0 ए0 में हिन्दी लेने का बहुत आग्रह किया था। परन्तु मैने एम0 ए0 में अर्थशास्त्र विषय लिया। डॉ0 के0 एस0 शर्मा अर्थशास्त्र के विभागाध्यक्ष थे, जो कभी-कभी अपनी पत्नी को भी मुझसे पढ़वाया करते थे। परन्तु वे मुझे पढ़ाने के लिए अतिरिक्त समय दे दिया करते थे। डॉ0 हरेन्द्र शास्त्री कुछ रसिक भी थे। वे एम0 ए0 (द्वितीय) हिन्दी की और विशेष रूप से छात्राओं की अतिरिक्त कक्षायें अधिकांशतः लिया करते थे। रसिक होने के कारण उनसे पढ़ने में आनन्द भी बहुत आता था। हमारे अर्थशास्त्र के विभागाध्यक्ष डॉ0 के0 एस0 शर्मा दुबले पतले व अर्थशास्त्री होने के कारण रूखे व्यक्ति थे। परन्तु अपने विषय के माहिर थे। मैने व चन्द्रपाल शर्मा हम दोनों ने एम0 ए0 में प्रथम श्रेणी में अधिकतम अंक प्राप्त करके विद्यालय में रिकार्ड बनाने का निश्चय कर रखा था। महाविद्यालय में उस समय डॉ0 लाल बहादुर सक्सैना अधिकतम योग्य प्राचार्य थे। उस समय परीक्षा में नकल करने की बात तो दूर रही, परीक्षार्थी पीछे मुड़कर भी नहीं देख सकता था। आज की तरह नम्बर बढ़वाने का सिलसिला भी नहीं था। हम दोनों ने खूब मेहनत करके वार्षिक परीक्षा दी। परीक्षा सन्तोषजनक हुई। परीक्षा देकर हम दोनों अपने-अपने घर चले गये। कुछ समय बाद जब मैं घर से लौटकर महाविद्यालय में आकर अपने अर्थशास्त्र विभागाध्यक्ष जी से मिला तो उन्होने प्राचार्य जी से मिलने को कहा।

जब मैं उनसे मिलने गया और दरवाजा खटखटाया तो भीतर से आवाज आई कि किवाड़ खोल लो। किवाड़ खोलकर मैं जैसे ही प्राचार्य के कक्ष में घुसा तो वे चारपाई पर बैठे हुए लिखने की धुनाधुन में मस्त थे। मैं प्राचार्य जी के पैर छूकर उनके पास जमीन पर बिछे फर्श पर ही नीचे बैठ गया। प्राचार्य जी ने मेरा हाथ पकड़कर चारपाई पर अपने पाँयतन की ओर बैठाया और बोले कि तुमने परीक्षा में प्रथम श्रेणी में अच्छे अंक प्राप्त किये हैं, तुम्हारा

इस महाविद्यालय से एम0 ए0 का प्रथम बैच निकला है। मै तुमको अपना साथी बनाने की सोच रहा हूं। थोड़ी देर बाद उनके पैर छूकर मैं अपने कमरे में चला गया। उसी समय मेरे दादाजी गाँव में मृत्यु शैया पर पड़े थे। उनके प्राण मुझे नौकरी मिलने की सूचना सुनने की प्रतीक्षा में अटके हुए थे। दूसरे दिन महाविद्यालय के प्राचार्य डॉ0 सक्सैना साहब अचानक मेरे कमरे पर आये और बधाई देते हुए हाथ मिलाया तथा बोले कि तुमने महाविद्यालय का नाम रोशन किया है। तुमने इस परीक्षा में आगरा विश्वविद्यालय में प्रथम श्रेणी में प्रथम स्थान प्राप्त किया है। अब तक तुम इस महाविद्यालय के छात्र थे। परन्तु अब तुम इस महाविद्यालय में प्राध्यापक हो। मैने तुम्हारी नियुक्ति कर दी है। महाविद्यालय जाकर अपने विभागाध्यक्ष से पूछकर एक कक्षा पढ़ाकर योगदान करके गाँव चले जाओ और अपना सामान ले आओ। जब मैने महाविद्यालय में जाकर विभागाध्यक्ष जी को यह सब बताया तो कक्षा पढ़ाने को दे दी। जैसे ही मैं कक्षा में गया तो मेरे एम0 ए0 (प्रथम) के कुछ छात्र जो एम0 ए0 (द्वितीय) में मेरे साथ पढ़े थे, खड़े हो गये और दौड़कर उन्होने हाथ मिलाया और बधाई देते हुए कहा कि चलो हमारा साथी इस विद्यालय में प्राध्यापक हो गया। परन्तु कोई कोई यह भी कह रहा था कि खूब हाथ मारा। किस्मत के धनी हो। छात्रायें टकटकी लगाकर मेरी अटपटी वेशभूषा व मेरे चेहरे को देख रही थी तथा मुस्करा रहीं थी। उनकी मुस्कराहट व्यंगात्मक थी। जैसे तैसे कक्षा में घंटा पूरा करके 3 दिन की छुट्टी लेकर गाँव चला गया। गाँव में पहुंचने पर जैसे ही दादा जी को बताया गया कि मदनपाल को नौकरी मिल गई तो उनके चेहरे पर कुछ मुस्कराहट आई और उनके प्राण पखेरू उड़ गये। इसी महाविद्यालय में मैं 29 वर्ष तक विभिन्न दायित्वों को निभाते हुए अध्यापन कार्य करता रहा। इस अवधि में कुछ पराये अपने बनते रहे तथा कुछ अपने पराये होते रहे। यहीं से मेरा दूसरा जीवन प्रारम्भ होता है। यदि आज भी इस महाविद्यालय का अपनापन दस्तक देता है तो हृदय में गुदगुदी होने लगती है। इस महाविद्यालय के प्रत्येक व्यक्ति को मैं आज भी अपना मानता हूँ।

नियति चक्र में आवागमन सुनिश्चित है। पढ़ने-पढ़ाने का 33 वर्ष का अन्तराल गुनते-बुनते, कहते-सुनते कब बीत गया? अहसास ही नहीं हुआ। स्मृतियों के दंशों को बिसराकर और अनेक सुखद यादों को हृदय में संजोकर 1 जौलाई 1990 को मैं मेरठ प्राचार्य होकर चला गया। स्वभाववश अपनी कुछ कमियों के कारण विद्यालय के कुछ लोंगों को मैं प्रसन्न नहीं कर सका। जिसका मुझे खेद है। महाविद्यालय के परिवेश से बिछुड़ने का दुख न था। अच्छाई की स्मृति एवं बुराई की विस्मृति की अपेक्षा तथा कालिज की प्रबन्ध समिति, प्राध्यापकों, प्राध्यापिकाओं, कर्मचारियों के प्रति मंगलकामनाओं के साथ ..... ●

The College Where I Taught Post–Graduate Classes First

Dr. Brahma Dutta Sharma
Professor Emeritus
Hi–Tech Institute of Technology, Ghaziabad, U.P.

It was on the 5th of August 1965 that I joined D. A. V. Post–Graduate College, Bulandshahr as a Lecturer in English. When I Joined the College, Mr. Maharaj Singh was on a long leave and Dr. A. N. Johri was functioning as Head of the Department of English. The other teachers in the Department were Mr. R. P. Bharadwaj and Mr. Ali Athar. I taught the Essay paper in M. A. Final and Ancient Poetry in M. A. Previous. Among the poets prescribed in the course, there were G. Chaucer, E. Spenser, John Donne, John Milton, Thomas Gray, W. Collins and a few more. I had read the complete dramas of Shakespeare before joining this college. I was reading 'Paradise Lost' then. I tried to read the complete works of G. Chaucer also and I read some of the Tales including those of the Knight, the Miller and the Reave. I was 23 then. Actually, I resolved I would teach a poet only after I had read his complete works. The task has not been completed to this day. It was Dr. A. N. Johri who initiated me into writing and we jointly undertook the task of editing John Webster's drama 'The Duchess of Malfi'. This book of ours was published by M/S Kitab Ghar Gwalior.

I also remember most of my students of that year : V. K. Singh, Munna Lal Sharma, Fateh Vir Singh Azad, Sushma Rani, Daya Mittal, Manju Bhargava, Karuna Sharma, Urmila Kaushik, and Pratibha Gupta. If I have not mentioned other names, it does not mean I have forgotten them. V. K. Singh became a lecturer in a Degree College, Sushma Rani is Head, Department of English, A. K. P. Post–Graduate College, Hapur, Pratibha Gupta joined D. A. V. College, Bulandshahr itself as a Lecturer in History.

D. A. V. Post–Graduate College, Bulandshahr is also my alma mater. I did my graduation from this college. I was only 15 when I joined this college as a student of B. A. Part I in July 1957. It was a degree college then. It became a post–graduate college in 1959–60. At that time the college had no building of its own and it was run in some tin–shaded rooms borrowed from D.A.V. Inter College, Bulandshahr. Dr. M. S. Natrajan was the Principal of the college ; Mr.

Pauranik and Mr. B. K. Kansal taught us English; Shri H. S. Harendra Shastri and Dr. Shri Ram Sharma taught us Hindi; and Mr. K. P. Saxena and Chaudhary Har Lal Singh taught us Political Science. Mr. Pauranik was B. A. Hons. from Oxford University. He taught us, among other things, William Shakespeare's comedy 'As You Like It' and made it so interesting that we felt the comedy was being staged before us. It was from Mr. Pauranik that we learnt that Shakespeare used to play the part of Adam in the play 'As You Like It', that in the dramatic company of Shakespeare, there were two boy actors who used to play the part of women, that one of them was taller than the other, that the taller of the two used to play the part of the tall girl like Rosalind and the shorter of the two used to play the part of the short girl like Celia; that Shakespeare makes his heroine disguise herself as a boy because the boy actor who played the part of the heroine felt more comfortable in the male attire.

Mr. Pauranik had joined D.A.V. College after he had retired. But he was quite energetic and agile. He kept standing on the dais throughtout the period and showed not even an inclination to sit in his chair. He spoke English so fluently that he likened his speed of teaching to the speed of a racing train. He used to say to us : "Whenever something is not clear to you, immediately stand up and say to me, The train cannot go further.: The students had nick–named him 'Daddy', perhaps because he was the oldest teacher in the college then.

I was a very shy boy at that time and rarely spoke to anybody but my old classfellows from Jahangirabad. One day Mr. Pauranik gave us a composition test on the topic, if I correctly remember, "The Recollections of my Childhood Days". When Mr. Pauranik showed us our evaluated scripts, he announced, "Brahma Dutta Sharma has done best as there is not even a single mistake in his composition. He has been awarded A+. And he is the only boy to get that grade." Then he asked who Brahma Dutta Sharma was. I stood up and everyone in the class clapped and cheered me. But Mr. Pauranik was surprised to see me and said, "You are Brahma Dutta Sharma?" Perhaps he did not expect a silent boy like me to do well in the test.

In the half–yearly examination I did so well in the paper of Political Science that one day Mr. K. P. Saxena, while calling the rolls, asked, "Who is Brahma Dutta Sharma?" I stood up and said I was Brahma Dutta Sharma. Then he announced, "This is not a

police enquiry; but he has answered his questions in the examination very well". On finding my answers to be unusually good, Mr. B. K. Kansal went to the extent of making a remark to the sense that he always expected me to turn out to be a promising student. However, I was not able to get attractive marks in the University examination. And that fact has caused me a lot of humiliation in my life. Had I become complacent with my performance in the half-yearly examination? Did I let myself be detracted towards non-academic affairs? Had I become too confident?

In the year 1958–59 when I, came to B. A. Part II, Dr. Lal Bahadur Saxena joined the college as its Principal. He was a man of History. In his first address to us, he told us the history of the town of Bulandshahr : he told us that Bulandshahr was called Bulandshahr on account of its location on a hillock. Only a few months after joining the college he was awarded the degree of D. Litt. For this achievement of his, he was spoken of by students in highly appreciative terms. Though I knew very little about research in those days. I too began of becoming D. Litt. some day. This dream of mine was realized 28 years later when Meerut University, Meerut conferred the degree of D. Litt. on me on my thesis 'The Projection of the Oriental Philosophies in the Beat Writers'.

Mr. Maharaj Singh joined the college as Head of the Department of English in the session 1958–59. That very year Mr. Mitthan Singh too joined the college as a lecturer in English. Mr. Maharaj Singh taught us Shakespeare's 'Macbeth', and Mr. Mitthan Singh taught us Bernard Shaw's drama 'Arms and the Man', and Thomas Hardy's novel 'The Mayor of Casterbridge'. I still remember how he told us that impulsiveness was Henchard's tragic flaw. It was then that I learnt how Bernard Shaw was different from Shakespeare and how he wrote the dramas of ideas like the Norwegian dramatist Ibsen. Mr. H. S. Harendra Shastri was not only a marvellous teacher but also an eloquent speaker. I still remember how interesting Ramdhari Singh Dinkar's 'Kurukshetra' and Maithilisharan Gupta's 'Yashodhara' became in his class. Dr. Shri Ram Sharma taught us Hindi Novel and Drama. By that time the college had acquired it own building at its present site. The new building had been inaugurated by the then Vice Chancellor of Agra University, Agra Mr. Kalka Prasad Bhatnagar.

During the Principalship of Dr. M. S. Natarajan, we heard Hindi only during the periods of Mr. H. S. Harindra and Dr. Shri Ram

Sharma. In every other period the lectures were delivered in English. Even outside the class-rooms people liked to converse in English. But with the arrival of Dr. Lal Bahadur Saxena the flood-gates of Hindi were opened and most of us switched over to Hindi. Dr. Lal Bahadur Saxena always addressed us in Hindi. So nobody felt any complex in using Hindi. Since Dr. M. S. Natarajan was a man of Economics and Dr. L. B. Saxena was a man of History, I never got an opportunity to attend the classes of either of these two Principals.

Many of these teachers of ours became Principals later. For example, Mr. B. K. Kansal became the Principal of Vardhaman College, Bijnor; Mr Mitthan Singh became the Principal of Krishak Degree College, Mawana; Mr. Maharaj Singh became the Principal of Rana Degree College, Pilkhuwa, though he soon left the post and came back to D. A. V. College and Dr. H. S. Harindra became the Principal of Jat College, Baraut. Some of these teachers also got jobs in universities : Mr. K. P. Saxena, for example, joined Jawahar Lal Nehru University, Delhi.

Some class-mates of mine also deserve mention. One of them was Prabhoo Dayal Sharma. He has founded a college of professional education, namely V. Tech Institute of Integrated Technology, Bulandshahr. I joined this college as its Principal in September 2004 after my retirement from Kumaun University, Nainital where I worked as Professor and Head, Department of English from October 1990 to April 2001 and where I also worked as Campus Director, D. S. B. Campus, Kumaun University.

I developed friendly relations with some other class-mates of mine. They included Jang Bahadur Sharma, Jagdish Chandra Sharma, Chandra Pal Sharma and Madan Pal Sharma. As a matter of fact, all of them were my room-partners at one stage or the other. Jang Bahadur Sharma later became an Advocate; Jagdish Chandra Sharma later became a teacher in Delhi; Chandra Pal Sharma retired as Reader & Head, Department of Hindi, Rana Post-Graduate College, Plkhuwa and Madan Pal Sharma retired as Principal, N. A. S. College, Meerut, Harish Prasad Kaushik was another friend of mine. He retired as Head, Department of Political Science, A. S. Degree College, Lakhaoti.

स्मृति पटल से .....

डॉ0 (श्रीमती) सुषमा गुप्ता
(पुरातन छात्रा)
रीडर व अध्यक्ष, अंग्रेजी विभाग, ए.के.पी. (पी.जी.) कॉलिज, हापुड़

डी0ए0वी0 कॉलिज, बुलन्दशहर से मेरा प्रत्यक्ष सम्बन्ध जुलाई 1963 में हुआ। इससे पहले तो इतना ही मालूम था कि डी0ए0वी0 नाम का डिग्री कॉलिज भी है, जिसमें Co-Education है। यह बात उस समय की है जब मैनें बुलन्दशहर के राजकीय कन्या उच्चतर माध्यमिक विद्यालय से इण्टर पास कर बी0ए0 प्रथम वर्ष में डी0ए0वी0 में प्रवेश लिया। उस समय महाविद्यालय में केवल एक पंक्ति Class Room की थी एवं छात्राओं के लिए एक अस्थायी सा Common Room था, Library का हॉल तथा संलग्न केवल तीन विभागों के कक्ष थे। कॉलिज का कोई अपना प्रवेश द्वार भी नहीं था न अन्य कोई इमारत बनी थी। बी0ए0 प्रथम वर्ष में हमारी (छात्राओं की) कक्षाएँ अलग से होती थीं, क्योंकि हमारा पूरा सैक्शन था। केवल अंग्रेजी साहित्य (English Literature) की क्लास Combined होती थी। उसमें भी हम छात्राओं की सीटें एक तरफ सुरक्षित होती थीं। हम पंक्ति से चुपचाप कमरे में प्रवेश करते, अपनी सुरक्षित सीटों पर बैठते चले जाते व पीरियड के अन्त तक इसी प्रकार बिलकुल शान्त नीचे देखते हुए बैठे रहते। यदि कुछ नहीं भी समझ में आता था तो Combined Class में पूछने का साहस नहीं होता था। मैं तो फिर भी यदा-कदा पूछ लेती थी परन्तु अन्य मेरी साथी तो क्लास से निकलकर ही मानो सांस लेती थीं और तब कहती, "सुषमा, जरा यह तो बता कि आज ये भारद्वाज साहब क्या कह रहे थे। ये तो कुत्ता भी अंग्रेजी में ही भगाते हैं। इनसे कैसे पूछे, हमें तो तू ही पढ़ा दिया कर।' अंग्रेजी में भारद्वाज साहब तभी आये थे जो कि आज सेवानिवृत्त होकर मुरादाबाद में निवास कर रहे हैं। इसी प्रकार अली अतहर साहब भी तभी आये थे। दुर्भाग्यवश अतहर साहब सेवा अवधि में ही अकाल मृत्यु का शिकार हो गये। उस समय हम लोगों को (छात्राओं को) यह कोई जानकारी नहीं थी कि हमें पढ़ाने वाले स्थायी हैं या अस्थायी और कौन Leave Vacancy में है। ट्यूटर तो तब होते नहीं थे। प्रबन्ध तन्त्र का तो कभी कोई परिचय ही नहीं मिला। हिन्दी साहित्य पढ़ाने वालों में मुझे डॉ0 हरीन्द्र शास्त्री की क्लास आज भी याद है क्योंकि वह दो-दो, तीन-तीन घण्टे तक लगातार पढ़ाते रहते थे जिसे भी बाहर घूमते देखते उसी को क्लास में बैठने का आदेश देते चाहे वह किसी भी क्लास का विद्यार्थी हो। उस समय किसी का यह साहस नहीं था कि मना कर सके या कहे, सर मेरे पास हिन्दी नहीं है।, "आज तो मुझे नहीं मालूम कि शास्त्री जी कहाँ हैं परन्तु उस समय वह बिना घड़ी देखे पढ़ाते चले जाते। रसराज श्रंगार रस की कविताएँ तो इतने विस्तार से समझाया करते थे कि नजर ऊपर करने की हिम्मत ही नहीं होती थी। राजनीति शास्त्र कुछ समय एक नये परन्तु बहुत उत्साहपूर्ण जौहरी सर ने पढ़ाया था। वह बहुत ही खुश रहने वाले व जोश के साथ पढ़ाने वाले व्यक्ति थे। एक वाक्य जो वह प्रायः दोहराते थे, वह मुझे आज भी याद है कि "भारत का भविष्य

military dictatorship की ओर जाता दिखायी दे रहा है।' यह बात 1963-64 की है परन्तु तब की स्थिति का विश्लेषण करते हुए यह वाक्य वह प्रायः ही दोहराते थे। वैसे हमें राजनीतिशास्त्र में इंग्लैण्ड का संविधान बहुत विस्तार से चौधरी सर पढ़ाते थे। वह रोज कहते थे, "The King has to sign his own death warrant." उस समय पी-एच0डी0 धारक आज की तरह सामान्य बात नहीं थी। अंग्रेजी में बी0ए0 स्तर पर लगातार तो आर0पी0 भारद्वाज साहब एवं स्व0 ए0एन0 जौहरी जी ने पढ़ाया। अपने शिक्षकों की प्रत्येक स्तर पर मैं सौभाग्य से प्रिय छात्रा रही हूँ और मुझे तो उस समय केवल यह ज्ञान था कि जो भी शिक्षक हमारी क्लास ले रहे हैं, उनका हर वाक्य-वेद वाक्य है। मैं स्वयं एक शिक्षक की पुत्री हूँ अतः शिक्षक को भगवान समझना ही सीखा था। न तब टी0वी0 था न वातावरण में इतने मनोरंजन के साधन। होंगे भी तो बहुत धनाढ्य या उच्च स्तर के परिवारों में। मैं तो बहुत साधारण मध्यम वर्गीय के परिवार से हूँ। बी0ए0 फाइनल में आने पर राजनीति शास्त्र विभाग में प्रो0 उषा गुप्ता आयीं जो भूतपूर्व कुलपति पी0डी0 गुप्ता की पुत्री थीं। उस समय शेष सारा स्टाफ पुरूष वर्ग का ही था केवल मैडम उषा जी ही अकेली महिला थीं। मेरे पास हिन्दी साहित्य, अंग्रेजी साहित्य व राजनीति शास्त्र विषय थे। सामान्य अंग्रेजी पूरे सौ नम्बर का आवश्यक विषय था। प्रायः छात्र-छात्राएँ अंग्रेजी को ही बी0ए0 स्तर पर अवरोधक पाते थे और इसी विषय में फेल होते थे या Supplementary आती थी। Grammar काफी उच्च स्तर की थी व तीस नम्बर की Precis आती थी। बी0ए0 पास करने के लिए चार विषय पढ़ने आवश्यक थे। तीन ऐच्छिक और एक आवश्यक जिसका नाम सामान्य अंग्रेजी (General English) था। इस सामान्य विषय के कारण ही Result गिर जाता था परन्तु यह पूरे विश्व विद्यालय के छात्रों के साथ होने वाली बात थी। अर्थशास्त्र विषय मेरे पास तो नहीं था परन्तु मेरी अन्य साथी थी जिनकी क्लास प्रो0 वी0पी0 सिंह लेते थे। सभी नियमित रूप से क्लास में आते थे। कॉमन रूम टूटा-फूटा सा था परन्तु उसमें लगे नोटिस बोर्ड पर देखकर सुबह ही पता लग जाता था कि कौन से प्रोफेसर साहब नहीं आयेंगे। यह बात तब किसी के मस्तिष्क में ही नहीं आती थी कि क्लास में ही न जायें। प्रो0 रघुनन्दन शर्मा इतिहास विषय पढ़ाते थे और डॉ0 सक्सैना प्राचार्य थे। एक वर्ष बाद प्रो0 रघुनन्दन जी को प्राचार्य पद सँभालते देखा। यह हमें कुछ नहीं मालूम था कि कौन अस्थायी रूप से आया है किसको कैसे चार्ज दिया गया है क्योंकि मैंने कभी किसी प्रोफेसर को दूसरे प्रोफेसर या प्राचार्य के बारे में छात्रों के समक्ष या उनके साथ बातें करते नहीं देखा था। सभी कक्षाएँ नियमित रूप से चलती थीं और हम सभी नियमित रूप से आते थे। सामान्य अंग्रेजी प्रो0 आर0पी0 भारद्वाज पढ़ाते थे। एक बार उन्होंने बहुत अजीब से विषय पर निबन्ध लिखने को दिया जिसका शीर्षक मुझे आज भी याद है- "The Type of Funeral That I Would Like to Have." सबने किताबों में खोजा पर कहीं किसी को एक पंक्ति भी इस विषय पर नहीं मिली। मुझे आज भी याद है कि जब कॉपी एकत्र करने के लिए कहा गया तो कोई कॉपी थी ही नहीं। मैंने अलबत्ता चार-पाँच पेज में लिखकर भारद्वाज साहब को चैक करने के लिये दिया था। मेरे निबन्ध का निष्कर्ष था कि मेरा यह शरीर किसी के लिये हितकारी या उपयोगी सिद्ध हो सके तो वही funeral सर्वोत्तम रहेगा। इससे ज्यादा मेरी समझ में उस समय

कुछ नही आया बस इतना था कि सादा सी भाषा (English) में अपने विचार व्यक्त करने आते थे। सीधे-सादे विषयों पर तो सभी लिखते थे। उस समय आज की तरह ही वार्षिक परीक्षा की व्यवस्था थी परन्तु दिसम्बर मास में कॉलिज अर्द्धवार्षिक परीक्षा कराते थे। उसे भी सभी विद्यार्थी देते थे। बी0ए0 में मुझे इण्टर के परीक्षाफल के आधार पर छात्रवृत्ति मिली और बी0ए0 के परीक्षाफल के आधार पर एम0ए0 में, इसलिये पढ़ाई पर व्यय तो कुछ हुआ ही नहीं। जितनी फ़ीस जाती थी उतना ही scholarship मिल जाता था।

वर्ष 1965 में मैंने बी0ए0 पास कर एम0ए0 में प्रवेश लिया। अंग्रेजी साहित्य में रूचि होने के कारण इसी विषय में एम0ए0 करने का सोचा। उस समय मैं या मेरी कोई भी friend या calssmate बस रूचि होने के कारण ही विषय का चुनाव करते थे, किसमें career बनेगा या service के अच्छे अवसर होंगे, यह सब किसी के विचारों में ही नहीं था। यह सब तो लड़कों को पढ़ाते समय विचार किया जाता था। एम0ए0 में कुल मिलाकर नौ पेपर्स होते थे। एम0ए0 फाइनल इंग्लिश में Viva-Voce भी होता था। हम लोग क्लास में नौ विद्यार्थी थे। चार लड़कियाँ और पाँच लड़के। दो casual student थे। कुल मिलाकर ग्यारह। दुर्भाग्य से उस वर्ष 1966 में परीक्षाफल बहुत ही खराब रहा। वैसे हमारी कक्षाएँ बिल्कुल नियमित रूप से होती थी। उस वर्ष प्रो0 बी0 डी0 शर्मा ने भी डी0ए0वी0 में join किया था। M.A. Previous में Poetry की क्लास प्रो0 शर्मा की होती थी। मुझे आज भी याद है कि Spenser की Faerie Queene Book I उन्होंने पूरे detail में पढ़ायी थी। उस वर्ष मुझे पारिवारिक कार्य से डेढ़ महीने के लिए मद्रास जाना पड़ा था इसलिये मेरी काफी Class छूट गयीं। प्रो0 अमरनाथ जौहरी जो विभागाध्यक्ष भी थे, Shakespeare का पेपर पढ़ाते थे। प्रो0 अली अहतर drama व प्रो0 भारद्वाज Prose पढ़ाते थे। परन्तु यह chance था कि इतनी नियमित कक्षाएँ होने पर भी 1966 में पूरा batch ही फेल हो गया। अखबार में केवल मेरा Rollnumber था, और एम0ए0 फाइनल में तो मैं इकलौती छात्रा थी। जौहरी साहब मुझे solitary support of M. A. Final कहकर सम्बोधित किया करते थे। एम0ए0 फाइनल में मुझे/हमें कोई कमरा allot नहीं किया गया था। प्रातः 6.45 से Class होती थी। मैं पहुँचकर दो कुर्सी व दो मेज बाहर या गैलरी में लगा लेती थी। एक अपने लिये व एक प्रोफेसर साहब के लिये। पहला पीरियड प्रो0 अली अतहर साहब का होता था। वह नियमित रूप से class लेते व खड़े होकर पढ़ाते। मैं अकेली सामने बैठकर पढ़ती व बीच-बीच में ऊपर की ओर देख लेती, क्योकिं प्रो0 साहब काफी लम्बे थे और बिना हाव-भाव देखे समझ में नहीं आता था। इस पेपर में मुझे पूरे विश्वविद्यालय में सर्वाधिक अंक मिले थे। आज अतहर साहब संसार में नहीं हैं परन्तु उनका आशीर्वाद व परिश्रम से दिया गया विद्यादान मेरे पास सुरक्षित है। प्रो0 बी0डी0 शर्मा बुलन्दशहर केवल एक वर्ष रहे इसलिए एम0एम0 फाइनल में उनसे पढ़ने का सौभाग्य नहीं मिला। विभागाध्यक्ष प्रो0 महाराज सिंह जो पहले 1965-66 अवकाश पर थे व 1966 में जुलाई में वापस आ गये थे। वह अपने विभागीय कक्ष में ही एम0ए0 फाइनल की Criticism की class लेते थे। उन्होंने जब देखा कि एम0ए0 फाइनल में केवल एक छात्रा है तो अन्य विभाग के सदस्यों से भी कहा कि इस

प्रकार की तैयारी करा दो कि इस एक की तो II division आ जाये। उस समय एम0ए0 इंग्लिश में II division की बहुत महत्ता थी और जहाँ पूरा batch ही गायब हो गया हो तो पूरा ध्यान बाकी रहे छात्रों पर केन्द्रित होना स्वाभाविक था। प्रो0 जौहरी साहब की Ph.D. उस वर्ष पूरी हुई थी और वह डॉ0 जौहरी बन गये थे। डॉ0 जौहरी History of English Literarure पढ़ाते थे। इस पेपर पर उनकी अपनी पुस्तक भी है, प्रो0 आर0पी0 भारद्वाज fiction पढ़ाते थे। सभी की इच्छा थी कि इस वर्ष सुषमा की II division. बन जाये तो पिछले वर्ष की कमी पूरी हो जायेगी। उन सबके आशीर्वाद से जो चाहा था वही हुआ। मैं अकेली appear हुई थी तो rollnumber तो एक ही दिखायी दिया परन्तु था ठीक श्रेणी के कॉलम में। तभी डी0ए0वी0 कॉलिज में vacancy निकली। मेरे विचार में आया कि क्यों न मैं यहां apply कर दूं, परन्तु उस समय प्रति वर्ष छात्र संघ के चुनाव होते थे और उसमें वातावरण कभी-कभी बिगड़ जाता था। यह सब देखते हुए प्रबन्ध तन्त्र ने या जो भी चयन हेतु नियुक्त किये गये थे, निश्चय किया कि अविवाहित लड़की की तो नियुक्त करेंगे ही नहीं। मेरे साथ दोनों ही अवगुण विद्यमान थे। इसी समय जब रिज़ल्ट को निकले एक सप्ताह ही हुआ था कि A.K.P. Degree College Hapur में vacancy निकली। मैंने अपने प्रोफेसर लोगों के सुझाव पर यहाँ apply किया व जुलाई 7, 1967 को मेरा A.K.P. Degree College Hapur में प्रवक्ता पद पर appointment हो गया। मुझे senior-junior का कोई ज्ञान नहीं था। घर से बाहर जाने के नाम से ही डर लगता था। परन्तु मेरे प्रोफेसर लोग चाहते थे कि मैं अवश्य join करूँ। उनकी प्रेरणा से ही मैंने A.K.P. में कदम रखा और आज तक लगभग चालीस वर्ष से वहीं पर हूँ। वर्तमान अंग्रेजी विभागाध्यक्ष डॉ0 विकास शर्मा ने मुझे तीन-चार बार डी0ए0वी0 कॉलेज, बुलन्दशहर में आने का अवसर दिया। हॉल की स्टेज पर बोलते हुए मुझे वह दिन याद आये जब मैं छात्रा के रूप में इसी स्टेज पर debate या speech competition में part लेती थी। मंच वही था, Hall वही था, बस अब वहाँ guest बनकर गयी थी। जहाँ कभी छात्रा के रूप में shield लेने के लिये खड़ी होती थी, आज माला पहनने व shield देने के लिये खड़ी थी। परन्तु आज भी वहाँ पहुँचकर ऐसा लगता है जैसे अपने घर में आ गयी हूँ। यह महाविद्यालय मेरी प्रेरणा का स्त्रोत है। मुझे जिन्होंने यहाँ तक पहुँचाया वे लोग वहाँ नहीं हैं, कुछ तो संसार में ही नहीं हैं, परन्तु उनके अपने हाथ से लिखे चरित्र प्रमाण पत्र मेरे पास सुरक्षित हैं। वे सभी लोग मेरी स्मृति में आज भी मेरी प्रेरणा हैं, मेरे आदर्श हैं व मैं जो भी तुच्छ योगदान दे सकी हूँ वह मेरे गुरू लोगों को ही समर्पित है। .....

डी0ए0वी0 तेरे परिसर के वे दिन .....

- डॉ0 अंशु बंसल
(पुरातन छात्रा)
प्राचार्य, गौरी शंकर कन्या महाविद्यालय, बुलन्दशहर

विद्यार्थी जीवन प्रत्येक विद्यार्थी के लिए एक महत्वपूर्ण अवसर होता है। यह वह समय होता है जब विद्यार्थी अपनी अकादमिक व शैक्षणिक यात्रा को गति दे रहा होता है। विद्यालयी जीवन से निकलने के बाद जब महाविद्यालय में प्रवेश होता है तो निःसंदेह एक प्रसन्नता की अनुभूति होती है। वर्ष 1982 में स्कूली शिक्षा पूर्ण करने के पश्चात, जब प्रथम बार अपने नगर के इस बड़े महाविद्यालय में बी0ए0 प्रथम वर्ष में प्रवेश लिया तब मन आह्लादित था। स्कूली वेशभूषा से मुक्ति व शिक्षकों की रोजमर्रा की डॉट-फटकार से जहाँ एक ओर मुक्ति का अहसास हो रहा था, वहीं दूसरी ओर महाविद्यालय के नये वातावरण में अपने को समायोजित कर पाने और न कर पाने की सुखद आकांक्षा भी थी। महाविद्यालय में अध्ययन करने का सभी का एक सपना होता है और वही मेरा सपना इस महाविद्यालय में प्रवेश के बाद पूरा हुआ।

मुझे याद आता है कि उस समय हमारे महाविद्यालय में एक शैक्षिक वातावरण दिखाई देता था। प्रातः 8 बजे से एम0ए0 की कक्षाएं प्रारम्भ हो जाती थीं और महाविद्यालय में शाम 4 बजे तक कक्षाएँ चलती थी। हम लड़कियों के लिए एक अलग कॉमन रूम की व्यवस्था थी। उसी कॉमन रूम में प्रातः काल के समय अंग्रेजी साहित्य के डॉ0 अली अतहर साहब अपनी कक्षाएँ लेते थे। अंग्रेजी साहित्य के रोमांटिक कवियों को पढ़ाने का उनका अंदाज निराला था। किसी भी कवि की कविताओं को पढ़ाने से पूर्व वे उसके जीवन और अन्य रचनाओं के सन्दर्भ में बताया करते थे। कक्षा का सारा वातावरण साहित्यमय हो जाता था। समस्त छात्र-छात्राएँ उनकी धाराप्रवाह अंग्रेजी को तन्मयता के साथ सुनते थे। मुझे यह लिखने में तनिक भी संकोच नहीं है कि मेरा जितना भी अंग्रेजी साहित्य व भाषा का ज्ञान है, वह प्रोफेसर अतहर साहब की कक्षाओं में नियमित रूप से जाने से है। अंग्रेजी साहित्य के प्रति मेरा रूझान भी उन्हीं के व्याख्यानों का परिणाम है। हमारा अन्तिम कालांश अर्थशास्त्र के प्राध्यापक डॉ0 अरूण भटनागर साहब का होता था। वे हमारी नियमित कक्षाएँ लेते थे। भटनागर सर समय के इतने पाबंद थे कि वे ठीक 2 बजे क्लास में आते थे और पूर्ण मनोयोग से अर्थशास्त्र की गम्भीर से गम्भीर गुत्थी को सहजता से छात्राओं व छात्रों को समझा देते थे। हमारे समय में बी0ए0 की कक्षा में 100 छात्र होते थे जिसमें मात्र 15-20 लड़कियां होती थीं। मेरे स्मृति पटल पर उस कक्षा का वह दृश्य अंकित हैं, जब भटनागर सर अपना व्याख्यान प्रारम्भ करते थे और पूरी क्लास शान्त भाव से उनके व्याख्यान को सुनती रहती थी और व्याख्यान के महत्वपूर्ण बिन्दुओं को अपनी डायरी में

अंकित करती रहती थी। हम लोग उनके व्याख्यान में इतने तल्लीन हो जाते थे कि पता ही नहीं चलता था कि 45 मिनट कब बीत गये।

मैने बी0ए0 अंग्रेजी साहित्य के अतिरिक्त हिन्दी साहित्य भी ले रखा था। डॉ0 आशा रानी शर्मा हमें हिन्दी साहित्य पढ़ाती थीं। दो साहित्य पढ़ने के कारण मेरे युवा मन में साहित्य व साहित्यकारों के प्रति श्रद्वा के बीज अंकुरित होने लगे थे। उसी श्रद्वा का परिणाम है कि आज प्राचार्य के पद पर बैठकर अत्यन्त विवशताओं के बाद भी मैं अपने महाविद्यालय में साहित्यिक गोष्ठियों को प्रोत्साहित करती हूँ व साहित्यकारों को आमन्त्रित करती हूँ।

अकादमिक गतिविधियों के साथ-साथ मेरा रूझान खेल-कूद की ओर भी था। महाविद्यालय में प्रत्येक वर्ष अनवरत क्रीड़ा प्रतियोगिताओं का आयोजन भी किया जाता था। विद्यार्थी काल में मुझे महाविद्यालय की क्रीड़ा परिषद् की अध्यक्ष बनने का सौभाग्य मिला तथा मैनें दो बार महाविद्यालय की टीम के कप्तान के रूप में अर्न्तविश्वविद्यालय प्रतियोगिताओं में प्रतिनिधित्व किया। 1986 में कलकत्ता (आजकल कोलकाता) खो-खो अर्न्तविश्वविद्यालयी टीम की कप्तान के रूप में प्रतिनिधित्व किया। मुझे याद है कि प्रत्येक शाम को हम पूरी टीम के साथ महाविद्यालय के क्रीड़ा स्थल पर अभ्यास करते थे।

महाविद्यालय की प्रत्येक याद आज स्वर्ण जयन्ती वर्ष के अवसर पर मेरे सामने सीधे प्रसारण की तरह आ रही है। महाविद्यालय के शिक्षकों के अतिरिक्त तृतीय व चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों का व्यवहार भी निःसन्देह सराहनीय था। महाविद्यालय का पुस्तकालय पुस्तकों से समृद्व था तथा अनेक बार पुस्तकालय में विभिन्न संदर्भ पुस्तकों को देखने का अवसर मिला। उस समय के पुस्तकालयाध्यक्ष श्री वी0पी0 शर्मा हम सभी छात्र-छात्राओं का ध्यान रखते थे तथा हमें पुस्तकें उपलब्ध कराते थे।

चार वर्षो की स्मृतियाँ अनेक हैं किन्तु संस्मरण को संक्षिप्त करते हुए यही कहना चाहूँगी कि आज मैं अपने इस डी0 ए0 वी0 महाविद्यालय के समस्त प्राध्यापकों व कर्मचारियों के सहयोग से इस मुकाम तक पहुँची हूँ। अतः उन सभी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करने में, मैं कोई कंजूसी करना नहीं चाहूँगी। महाविद्यालय की पुरानी किलेनुमा दीवारों में, मैं अपनी युवावस्था की स्मृतियों को खोजती हूँ और स्वयं को इस प्रतिष्ठित महाविद्यालय की पूर्व छात्रा होने में गर्व का अनुभव करती हूँ और प्रभु से प्रार्थना करती हूँ कि मेरा महाविद्यालय उत्तरोत्तर प्रगति के सोपानों पर चढ़ता रहे।

आज भी आनन्द अभिभूत हूँ .....

- पी0 के0 सिंह
(पुरातन छात्र)
वरिष्ठ प्रवक्ता, आंग्ल-भाषा, डी0ए0वी0 इन्टर कॉलिज, बुलन्दशहर

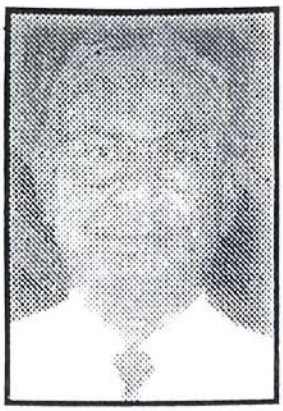

मानव मन भी कैसा अद्भुत कम्प्यूटर है! उसके पास संजय की दिव्य-दृष्टि है। बात सिर्फ मानव की जागृत अवस्था की है। संवेदनशीलता की है। व्यक्ति, वस्तु अथवा घटना के साथ आत्मसात् करने की है। प्रभु-कृपा से मेरा मन बड़ा ही संवेदनशील है। भावुक है। अतिशीघ्र सम्बन्धों से आत्मसात् कर बैठता है। आज होली की रात दस बजे फोन पर विकास-पुरोधा, प्रज्ञा-पुरूष डॉ0 विकास शर्मा के आत्मीय आग्रह पर महाविद्यालय की वार्षिक पत्रिका के लिए एक संस्मरण की शिवम् सामग्री के लिए मैंने मन के स्मृति-स्विच को ऑन किया है। 38 वर्ष पुरानी विद्यार्थी जीवन की स्मृतियाँ अचानक सजीव साकार हो आई हैं। 1969 से 1972 तक अर्थात् बी0 ए0 ऑनर्स इंग्लिश से एम0ए0 इंग्लिश तक की समस्त अंतरंग अनुभूतियाँ जीवन्त हो उठी हैं। कैसा सुन्दर, शिष्ट, संस्कारित शिक्षा का वातावरण है। आत्मानुशासन है। आपसी सामंजस्य है। सौहार्दपूर्ण वातावरण है। शिक्षक, शिक्षार्थियों के मध्य सद्भाव है। प्राचार्य श्री रघुनन्दन शर्मा जी के निर्देशन में महाविद्यालय परिसर माँ सरस्वती की वीणा के मधुर स्वरों से झंकृत है। प्रेरणादायी संस्मरण की कमाण्ड पाते ही मन मुझे बी0ए0 इंग्लिश की छात्र-छात्राओं की सम्मिलित कक्षा में ले गया है। मैं देख रहा हूँ कि बहुमुखी प्रतिभा के धनी श्री आर0पी0 भारद्वाज (जिनका नगर में अंग्रेजी ज्ञान को लेकर, मानक उच्चारण और अंग्रेजी व्याकरण को लेकर अतिविशेष सम्मान है।) जी0 बी0 शॉ के नाटक 'आर्म्स एण्ड दा मैन' को पढ़ा रहे हैं। व्याख्या करते-करते व्याकरण और उच्चारण की बारीकियाँ बताने लगे हैं। विद्यार्थी व्यवस्थित हैं और ग्रहणशील भी। श्रवण को समर्पित है। मेरे अगल-बगल कुमारी अपर्णा सिंह व मीनाक्षी जौहरी बैठी हैं। आगे-पीछे लक्ष्मण सिंह, रविन्द्र कुमार शर्मा एवं अली शेर हैं। अचानक विलक्षण विस्फोट होता है। मुझे कोई आन्तरिक सत्ता कुछ विशेष कहने के लिए आदेशित करती है। मैं बेबस हूँ। आवेशित हूँ। आत्मानुपालन में खड़ा होता हूँ। सभी की दृष्टि मुझ पर टिकी है। प्रोफेसर साहब स्वयं विस्मित हैं। अनायास मेरा मुँह खुलता है और अन्तर-अभिव्यक्ति शब्दों में व्यक्त होती हैं - 'Excuse me sir, here you are mistaken. The pronunciation of the words 'politician' and 'beautician' is not 'पॉलटिश्यन' व 'ब्यूटिश्यन्' Sir, it is 'पॉलटिश्न्' व 'ब्यूटिश्न्' ..... इतना कहना और सुनना हुआ कि कक्षा में सन्नाटा छा गया है। सभी शान्त हैं। अन्दर से क्लान्त हैं। मेरी मनःस्थिति विचित्र है। प्रोफेसर साहब मेरी ओर विशाल उभरी आँखों से एकटक देखे जा रहे हैं। सभी संगी-साथी भविष्य के अनुमानित दुष्परिणाम से भयभीत है। मैं स्वयं चिन्तित हूँ, सोच-सोचकर कि यह सब कुछ कैसे हो गया है! अचानक परिवर्तन का पटाक्षेप होता हैं। प्रोफेसर साहब के मुखारविन्द से अप्रत्याशित, आश्चर्यजनक अभिव्यक्ति होती है। "Thank you very much, Mr. Pramod for your kind correction". यह कहकर

उन्होंने क्लास छोड़ दी है। सभी ने सुना है किन्तु किसी को विश्वास नहीं हो रहा है। विशुद्ध विलक्षण स्वीकृति को स्वीकार नहीं कर पा रहे हैं। जाने क्या सोचते-सोचते सभी कक्षा से चले जा रहे हैं। मैं वहीं वैसा ही स्थिर, स्तब्ध खड़ा हूँ। प्रोफेसर साहब पास आते हैं। मैं किसी भी प्रायश्चित अथवा परिणाम के लिए समर्पित हूँ। वे स्नेहपूर्वक कहते हैं - 'आईये, आज आपको अपनी कुटिया दिखा दें ....।' मैं साथ चल देता हूँ। आज पहली बार मैंने भारद्वाज सर के मुख से हिन्दी उच्चारण सुना है। कुछ ही समय में जी0आई0सी0 के फील्ड से होकर हम टीचर्स कॉलोनी में 'प्रभा भवन' में पहुँच जाते हैं। मुझे ड्रांईग रूम में बैठाकर 'सर' स्वयं अन्दर कमरे में प्रवेश कर जाते हैं। अगले ही क्षण मुझे एक छोटी सी प्लेट में ड्राई फ्रूटस - किशमिश, काजू देते हुए कह रहे हैं - 'Please do have it.' कहकर पुनः अन्दर चले जाते हैं। मैं आदेश अनुपालन में लग जाता हूँ। किस भाव और स्वाद से खा रहा हूँ, कह नहीं सकता। कुछ ही विलक्षण क्षणों के उपरान्त प्रोफेसर साहब हाथ में एक सुन्दर सी लाल कवर की पुस्तक लाते हैं। अन्दर के पृष्ठ पर कुछ लिखते हैं। मैं अपलक देख रहा हूँ। विशिष्ट स्नेह के भाव से पुस्तक मुझे थमाते हुए कह रहे हैं - 'Have this book. Now it is yours. मन से पढ़ना। बड़े काम की है। मुझे ब्रिटिश काउंसिल ने Present की थी।' पुस्तक लेकर विशिष्ट वेग से मैं बाहर आ गया हूँ। घर की ओर तेजी से बढ़ रहा हूँ। घर पहुंचकर मैंने पुस्तक को एक बार नहीं अनेक बार देखा है। कवर पर लिखा है - Everyman's English Pronouncing Dictionary – By Daniel Jones. अन्दर के पृष्ठ पर Sir ने लिखा है 'To, Pramod for his love of exact pronunciation'. हस्ताक्षर करके दिनांक भी डाली है - 16–10–1970

कैसे आनन्द-अमृत की वर्षा हो रही है मुझ पर! कितना खुश हूँ। महाहर्षित हूँ! रोम-रोम आनन्द उत्सव में रत है। अमर क्षण हैं। अमिततोष मिला है मुझे। गुरू आशीर्वाद मिला है। सत्यनिष्ठ श्रद्धा को साधुवाद मिला है। मेरी आध्यात्मिक आस्था गरिमा को प्रणव प्रसाद मिला है। तन-मन-आत्मा, सभी सुख-शान्ति और आनन्द से मालामाल हो उठे हैं। मैं आनन्द आप्लावित हूँ। आज भी अभिभूत हूँ .....।

कितने अच्छे, समर्पित, ईमानदार, अहंकार-मुक्त गुरूजन हुआ करते थे उन दिनों! अच्छाई की होड़ लगी थी। मेरे वातानुकूलित आत्मांक में ऐसे अन्य कई संस्मरण हैं जिनके माध्यम से मैं अन्यान्य आदर्श गुरूजनों का आभार व्यक्त करना चाहता हूँ। मैं डॉ0 महाराज सिंह, डॉ0 सोबरन सिंह शास्त्री, डॉ0 अली अतहर, डॉ0 सचदेवा, डॉ0 मालती वर्मा .... की पावन स्मृति को नमन करना चाहता हूँ। बहुआयामी प्रतिभा-पुरूष डॉ0 विकास शर्मा को अर्धशती-स्मारिका सृजन के प्राणमय प्रयास के लिए बधाई देना चाहता हूँ। किन्तु मुझे संस्मरण के कलेवर की सीमा-मर्यादा का भी सम्मान करना हैं। सन् 1972 में प्रकाशित पत्रिका का मैं अंग्रेजी विभाग का छात्र प्रतिनिधि संपादक रहा तथा मेरी चर्चित अंग्रेजी कविता 'Night & Thou' प्रकाशित भी हुई। आज मुझे अध्यापक के रूप में व्याकरण और उच्चारण को लेकर, मौलिकता और सृजनात्मकता को लेकर जो भी स्नेह, मान-सम्मान मिल रहा है - वह सब दिव्य गुरूजनों की कृपा प्रसाद का ही सुफल है। मैं उन्हें मन ही मन नित नूतन नमन करता हूँ। साथ ही अपने महाविद्यालय (Alma mater) के सतत् सार्थक उन्नयन के लिए प्रभु से प्रार्थना करता हूँ ..... ●

Treatment of the World War II in Manohar Malgonkar's novel 'A Bend in the Ganges'

Dr. Vikas Sharma
Head, Department of Postgraduate Studies
& Research in English
D.A.V. (P.G.) College, Bulandshahr

In India, there was a mixed reaction to the World War II. The colonial India was forced to side with the British. The Indian soldiers went away to face and fight the Fascist menace. Even the leaders of the Freedom Movement, in spite of their earlier bitter experiences of the First World War, lent support to their masters. The unquestionable leader of the freedom struggle, Mahatma Gandhi sympathised with the Britishers and said **"We do not seek independence out of Britain's ruin."**[1] However, it was in later stages that they realised the delicacy of the situation and embarked upon, a nation-wide movement, the 'Quit India Movement.' It started on August 8, 1942. Indians were placed on the horns of dilemma. The servile stood with the British Imperialism. The young enthusiasts sympathised and sided with the, what they felt and believed, liberating Japanese forces. A large number of Indians harboured friendly feelings for Japan because of Netaji Subash Chandra Bose. Percival Spear, judiciously, expresses this strangely divided India and states that the **"opinion was divided between democratic disapproval of Hitler and Nazism and nationalist suspicion of British and French imperialism. Left wing Congressmen who followed Nehru while critical of Germany were suspicious of Britain. The followers of Bose with his authoritarian leaning were inclined to wait with some expectancy. The country as a whole was far more detached in attitude than it had been in 1914."**[2]

Marxism let Netaji to have contacts with the revolutionaries. He rejected the demand for Dominion status. The Congress pleaded for it on the strength of the Nehru-Report. Bose advocated forcefully for complete independence. He respected Gandhi but abhored and condemned his ideology and the policy of compromise. His socialist views captured the attention and imagination of the younger section of the Congress. Bose caused annoyance in Gandhian circles by trying to stiffen the opposition of the Congress Party to any compromise with Britain. Bose wanted to exploit the Britain's peril to secure freedom. Gandhi and Nehru opposed the very idea of taking advantage of an imminent and inevitably Britain Germany con-

flict. Bose-Gandhi differences came to the fore and resulted in Bose's forming the Forward Block. Expelled from the Congress, Bose, who saw the British perfidy to the bones, finally and miraculously, escaped from India to lead an army against the British.

Japan entered the war in December 1941. Its excellent success at Singapore in February 1942 and in Malaya and the then Burma, brought India within the range of actual hostilities. Japan occupied Rangoon in March 1942. The Indians greeted these victories of Japan. They saw in them the victory for India and Netaji Subhash Chand Bose. The Congress set up organizations throughout the country in order to serve the people against a possible Japanese invasion. Thus, India, like the rest of the world, was divided into two camps-Pro-Japan and Pro-British.

Manohar Malgonkar, in his **'A Bend in the Ganges'** refers to the incidents of World War II on the Indian soil. He shows the fear and enthusiasm of the people, the movements of the Japanese forces, the British resistance and the mood of the people of India during those troubled days. Malgonkar explains the British fear and precaution about the war affairs elaborately in describing the letters addressed to the prisoners in Andaman. The Irish Superintendent, Mulligan did not like prisoners reading the war-news in their letters. Ghosh Babu, a Bengali head-clerk, in his instructions to Gian Talwar, a lifer with obedience to the crown, makes it clear emphatically, **"Hold back anything that says anything about war. Mulligan sahib is most strict about that."**[3] The movement of the Indian armies to combat the menace of the World War is suggested by Sundari's letter to her brother Debi Dayal in Cellular Jail, Port Blair, Andaman Islands. **"Gopal's regiment has been mobilized and he is likely to be called upon soon."**[4] Any letter referring to war invited serious objection from Mulligan. Gian Talwar could not hand over Sundari's letter to Debi, for, it contained reference to war and Gopal, Sundari's husband, a military officer. Through the depiction of Gian's dilemma, Malgonkar shows the strictness imposed by the war. **"He wished the letter had not contained the reference to some one joining a regiment and to the regiment being mobilized; for that would have to be cut out."**[5] Mulligan objected to every mail that spoke of war and German victories. The Indian prisoners in the Andaman Island hailed German triumph. People, there, sided with the Germans. Mulligan, in his objection to the letters speaking of German victories, says to Gian:

"No, we can't overlook that sort of thing, the way rumours spread in this place. Every one seems to want the demand Germans to win

so they'll be set free. You don't know what the Germans do with their prisoners. How they heard about the bombing of England. I can't imagine. ....Listening to them talk, you'd think the whole Royal Navy had been sank. And now they know all about Dunkirk."[6]

The statement of the Superintendent tells many an incident of the World War II. Germans's historic bombing of England, their major victories, the Indian people's euphoria and joy for German triumphs-all these things are beautifully delineated. Mulligan, however, sees no objection in an Indian joining the army. He finds **"Nothing wrong with that. I wish more Indians would, instead of damning the government."**[7]

Malgonkar, in great detail, portrays the effect of war on prisoners on the island. The war told upon the living of the prisoners: **"In the beginning, the war meant nothing to the convicts; it obtruded on their lives only in odd little ways: their lighting-up time was curtailed, their ration of molasses was cut, worms began appearing in their boiled rice and weevils in their chappaties-dark brown specks which looked like sesome seeds, tasted like sour mud and blistered their tongues.**

The regular ships from India had stopped and there were no fresh chalans. Ships had to be diverted to tasks more important than transporting criminals to the Cellular jail. ... Now news of home came only in letters brought by itinerant shops, letters that were mutilated by an ever-tigtening censorship."[8]

Malgonkar shows the multi-dimensional changes brought about by the war in a vivid way. **"Spurned by the war itself, those outside its main current strove to prove their zeal."**[9] The law in the colony was enforced with unprecedented sternness. A determined attempt was made to show that despite reverses of the war, the British Empire was as enduring as the sun and the hills, the convicts, in the Cellular jail, saw and felt the impact of war clearly. Their working hours were stepped up, privileges cut down and punishment stiffened.

Malgonkar, through the convicts, shows the psychology of the times. There appeared a slogan, inscribed in charcoal, on the wall of a calvert. It read **"Hitler-Ki Jai Angrez Muradabad."**[10] The entire jail felt fascinated. The fascination increased rapidly. The prison grape vine, suddenly, sprang to activity. It was rampant with rumours. The whispers of crushing defeats suffered by great armies, mass sinking of mighty ships, teeming cities flattened down by bombs raining from hundreds of aeroplanes, the proud countries overrun and subjugated by a world conqueror, Hilter-all these things

pervaded the place.

'A Bend in the Ganges' shows the hopes and aspirations of many Indians rising with the news of repeated German conquests. The defeats of the Allies brought hope, wild and unreasoning that any day, the British would collapse and their empire fall. The atrocities perpetrated by the British would come to an end. Hitler, in the imagination of the people, became the saviour. He assumed the form of **"some alien God, who had come to liberate the oppressed, an avtaar of Vishnu."**[11] The novelist, however, does not show any partisanship to the Germans. He presents a dispassionate view of Indians towards the great war. The learned and understanding did not share the views of the prisoners. Debi Dayal, emphatically states that **"I don't want the Germans, they are just as bad as the British."**[12] The English officers were never tired of praising their country and their might. They kept reiterating that **"the British army was immense, powerful, its resources inexhaustible; they had all the troops that were needed for the growing appetite of the war, to fight in Europe and Africa and the Arab countries and to spare."**[13]

The hectic preparation to raise the camp for the battalions to move in on the island to fight the fast-marching Japanese forces throws light on the victories recorded by the Asian Country in the neighbourhood of India. The novel records the advances of Japan:

"The enemy from a thousand miles away had sprung into action. Pearl Harbour was flattened. Indo-China, Malaya, the Dutch East Indies, crumbled like mud house in a monsoon flood and disappeared, leaving sad little heaps of unrecognizable debris and thick, oily bubbles on the surface.

The new year came, and every day brought the enemy closer and closer."[14]

To the prisoners of the Cellular Jail the way things were shaping and the nearing Japanese forces offered the best chance of deliverance. The news of Japanese having captured Rangoon delighted them. The Rangoon radio, in a special broadcast for the colony, promised deliverance to all the convicts and handing over of the British officials to the prisoners. The British made a plan to escape from and abandon the island. The Japanese brothers were cordially greeted on the island with the tumultuous slogan **"Japan-Hind, bhai bhai."**[15] Malgonkar presents a vivid account of the Japanese activities on the island. Debi's fear that the Japanese were, in no way, better than the Britishers came true. Anything bearing of British occu-

pation was ruthlessly eradicated. The Japanese officer felt proud of liberating the people of Malaya and Burma from the British, of Indo-China from the French, and the Dutch Empire from the Dutch. He unfolded the plan of liberating India, Ceylon and Australia. He referred to Indians joining the Indian National Army.

The novel presents the picture of Rangoon after the Britishers' unceremonially quitting it. They left Rangoon, almost casually, like tenants vacating the house. Even in their hurriedly leaving Rangoon, they tried to destroy whatever they had laboured to build. They did not care for the people they left behind. Through Debi Dayal, the protagonist, Malgonkar shows the disillusion with the Japanese. The Japanese did everything to humiliate the British. Debi found the Japanese uneasy companions-**"They were ruthless, overbearing and cruel far more cruel than the British could ever be...."**[16]. The novelist gives a long list of the cruelties perpetrated upon the vanquished people by the Japanese. Debi finds it **"difficult to reconcile their flagrant disregard for the other prisoners in the Andamans, or for the unfortunate Burmese citizens here in Rangoon, with their scraping and bowing, their toothy smiles, their excessive courtesy. He had seen coolies mercilessly flogged for minor dismeanours, by strutting, jack-booted soldiers; respectable men and women, press-ganged into a sweeper corps to clean the city's streets; he had been horrified by the callousness, glee, almost, with which they bayoneted their prisoners, and had squirmed at the tortures they inflicted on any one they suspected of working against their interests."**[17] Describing the disasterous British engagements with the Japanese, Malgonkar remarks; **"Whatever they had come up against the Japanese, they had been routed. More often they had preferred to withdraw, without even offering a fight, so that even their staunch supporters had turned against them."**[18] The Indian soldiers under the Japanese took it to be great honour to fight side by side with them. They took the Japanese to be saviours. They expected them to liberate India. They were determined to destroy everyone that stood between them and Delhi. Delhi was their destination. They took it to be their duty to welcome as friends anyone who is out to destroy the British nation-the Germans, the Japanese. All patriots, they believed, must assist them, and fight on their side.

In a dispassionate analysis, Malgonkar peeps into the inhuman activities indulged in, both, by the Britishers and the Japanese. To his dismay, he finds little difference between the two. He observes that **"there**

was little to choose between two brands of conquerors. Which was more repellent, the ugly blotches showing through the white or the flagrant yellow of the Japanese."[19]

The march of the vanquished refugees from Burma disgraced the British. The withdrawl and the most partisan British concern were far more callous and shocking than the massacre of Jallianwala. **"An arrogant, unbalanced, bitter man on the spot, ordering his machine gunners to mow down a mob was somehow less evil than were the authorities in Burma, where a government, its mask of respectability and self -righteousness torn away by a shattering military defeat, had been exposed as an ugly spectre, making the starkest distinction between brown and white."**[20] The British saved only the white. The colour of the skin, suddenly, sprang to importance. The British did not mind others being slaughtered by the Japanese. White skin assumed the essential qualification for being evacuated. The act of discrimination was shocking. The British tradition of fairness received a great set back in their handling of the Burma evacuation. The White Burma government carried out an organized evacuation of the families of its officials leaving the Indians to feud for themselves. The Burmese hated the Indians more than they did the British. Paniced by the Burmese hooligans, they turned refugees and poured out of the country in thick swarms, choking the roads. Their plight was pathetic, **"On the way they died like flies; they were butchered by Burmese strong-arm men for their little trinkets, decimated by cholera, small pox, dysentery and malaria; their womenfolk were taken by anyone who fancied them."**[21] Hunger destroyed them.

Malgonkar shows the Japanese attack on the city of Bombay. A tiny black cloud towered high over Malabar Hill. The docks had gone. It was devastation all round. The Bombay explosion was kept a tight secret. No one was supposed to know anything about it. **"The newspapers were forbidden to publish reports or pictures, even the casuality figures were a secret."**[22] It was, indeed, one of the greatest disasters of the war. The Empire looked ready to fall like a ripe mango into the hands of the waiting Japanese.

Malgonkar furnishes in detailed ano absorbing account of the impact and incidents of the World War II on the Indian soil. He shows the cruelties perpertrated by the British and the Japanese the shamefully partisan evacuation handling by the British from Burma was a disgrace to the British tradition. The Japanese presence on the Indian soil through several countries

of Asia received a mixed reaction from the Indians fighting for their freedom. Malgonkar peeps into the many facets of the war and, in a faithful study, explains the might of the Japanese and their occupation and subsequent plunder of the British possessions. The Japanese ambitious slogan of the march to Delhi and of humbling the British tyranny is beautifully emphasized upon. The story of the novel runs smoothly through the facts of history.

References

1. Percival Spear : A History of India; Vol. II, London : Penguin Books Ltd, 218.
2. Percival Spear: A History of India, 214.
3. Manohar Malgonkar: A Bend in the Ganges, Delhi : Orient Paperbacks,1964, 163.
4. A Bend in the Ganges, 166.
5. A Bend in the Ganges, 166.
6. A Bend in the Ganges, 167.
7. A Bend in the Ganges, 167.
8. A Bend in the Ganges, 172.
9. A Bend in the Ganges, 172.
10. A Bend in the Ganges, 175.
11. A Bend in the Ganges, 174.
12. A Bend in the Ganges, 182.
13. A Bend in the Ganges, 189.
14. A Bend in the Ganges, 199-200.
15. A Bend in the Ganges, 205.
16. A Bend in the Ganges, 260.
17. A Bend in the Ganges, 260-261.
18. A Bend in the Ganges, 261.
19. A Bend in the Ganges, 265.
20. A Bend in the Ganges, 265.
21. A Bend in the Ganges, 266.
22. A Bend in the Ganges, 282.

भारत की विदेश व्यापार नीति

(India's Foreign Trade Policy)

– डॉ0 राजेन्द्र सिंह
रीडर एवं अध्यक्ष, अर्थशास्त्र विभाग

स्वतन्त्रता के बाद के वर्षों में भारत का भुगतान सन्तुलन लगातार उसके विपक्ष में रहा है। प्रारम्भ में Sterling balance के कारण देश को भुगतान सन्तुलन के प्रति कोई विशेष चिन्ता नहीं थी, डालर क्षेत्र के साथ भुगतान सन्तुलन की आवश्यकता को दूर करने के लिए 1949 में रूपये का अवमूल्यन किया गया। जिसके कारण डालर की दुर्लभता समाप्त हो गयी। इसके अतिक्ति मित्र राष्ट्रों से भी अतिरिक्त ऋणों और अनुदानों के रूप में भारी मात्रा में सहायता मिलती रही किन्तु नियोजनविकास प्रारम्भ होने के बाद यह अनुभव किया गया कि नियोजन के माध्यम से आत्मनिर्भरता प्राप्त करने के लिए एक सुदृढ़ व्यापार नीति आवश्यक है।

भारत की विदेश नीति देश और काल की आवश्यकता के अनुसार परिवर्तित होती रही है। इस प्रकार यह कठोर और स्थैतिक न होकर लोचपूर्ण और प्रावैगिक है।

मुख्य रूप से इसके उद्देश्य निम्न प्रकार हैं :-

(1) आयात को केवल अति आवश्यक पदार्थों तक ही सीमित रखना।

(2) घरेलू उत्पादन से आयात वस्तुओं तथा कच्चे माल प्रतिस्थापन करने का प्रयास करना।

(3) इन औद्योगिक इकाइयों के विकास को वरीयता देना जो निर्यात व्यापार में लगी हुई हों।

(4) घरेलू उपभोग पर विभिन्न प्रकार के प्रतिबन्ध लगाकर निर्यात योग्य माल में वृद्धि करना।

संक्षेप में, भारतीय विदेशी व्यापार नीति का मुख्य उद्देश्य आयातों को विकासात्मक तथा निर्वाह आयातों तक सीमित करना तथा निर्यातों को इतना प्रोत्साहन दे देना कि आर्थिक आत्मनिर्भरता प्राप्त हो सके।

आयात नीति (Import Policy) :-

स्वतन्त्रता से पूर्व ब्रिटिश सरकार के हितों को ध्यान में रखकर वस्तुओं का आयात किया जाता था किन्तु स्वतन्त्रता के बाद इस औपनिवेशक नीति का त्याग कर दिया गया और उसकी जगह विकासोन्मुख आयात नीति को अपनाया गया है।

सन् 1948-49 से सन् 1951-52 तक डॉलर क्षेत्र के आयातों पर कड़े प्रतिबन्ध लगाये गये क्योंकि युद्ध के उपरान्त डॉलरों का बहुत अभाव और डॉलर देशों से व्यापार का घाटा बढ़ता जा रहा था। इसी कारण से 1949 में रूपये का अवमूल्यन भी किया गया। सन् 1950 में श्री जी0 एल0 मेहता की अध्यक्षता में सरकार ने आयात नियन्त्रण जांच समिति नियुक्त की तथा इसकी सिफारिशों को स्वीकार कर लिया। सन् 1952 में कुछ विशिष्ट वस्तुओं को छोड़कर आयात नीति मशीनरी, कच्चा माल तथा खाद्यान्नों के लिए काफी उदार थी।

प्रथम योजना की अच्छी स्थिति तथा द्वितीय योजना के विशाल औद्योगिकीकरण कार्यक्रमों के कोण 1955-56 में भी उदार आयात नीति का पालन किया गया। फलतः सार्वजनिक तथा निजी दोनों क्षेत्रों में आयात बहुत बढ़ता गया। 1956 तथा 1957 के अकेले दो वर्षों में भारत के विदेशी मुद्राकोष 482 करोड़ नीति अपना ली गयी। उपभोक्ता वस्तुओं के आयात में निर्दयता से कटौती की गयी। आयात नीति पर पुनः विचार करने के लिए 1972 में श्री मुदालियर की अध्यक्षता में 'आयात और निर्यात नीति समिति' की नियुक्ति की गयी। समिति ने सिफारिश की कि आयातों के लिए सबसे अधिक प्राथमिकता परिवहन तथा यातायात उद्योगों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए विदेशी विनिमय प्रयोग करने की इजाजत मिलनी चाहिए जो अपने निर्यातों से ही उसे कमा लेते हैं। इसके बाद आयातक को लाईसेंस देने की रीति में यह शर्त लगा दी गयी कि वे जो परमिट पायेंगे प्रथम छमाही में केवल 50 प्रतिशत से कम ही प्रयोग करेंगे ताकि आयात से ये कोष शुरू से ही प्रतिकूल प्रभावित न हों और बाद में आवश्यकतानुसार आयात, लाईसेन्सों में कटौती भी की जा सके।

निर्यात नीति (Export Policy) :-

नियोजित विकास कार्यक्रम प्रारम्भ होने से पूर्व भारत की निर्यात नीति का उद्देश्य डॉलर का उपार्जन था। विशेषकर किसी वस्तु के निर्यात करने की बात उस स्थिति में सोची जाती थी जबकि घरेलू मांग अपर्याप्त हो। इस प्रकार निर्यात एक आकस्मिक घटना थी। नियोजित विकास कार्यक्रम प्रारम्भ होने के बाद भी नियोजकों का यही विचार था कि देश के निर्यात में वृद्धि नहीं हो सकती क्योंकि उसकी मांग विदेशों में यथास्थिर है। फलतः आयात प्रतिस्थापन की ओर अधिक ध्यान दिया गया। यदि निर्यात का कोई अवसर मिला भी तो उससे लाभ नहीं उठाया जा सका। इस प्रकार निर्यात की पूर्णरूपेण उपेक्षा की गयी। नवम्बर 1957 में निर्यात प्रोत्साहन के लिए डिसूजा समिति की नियुक्ति की गयी यद्यपि इस समिति ने कई सुझाव दिये किन्तु द्वितीय योजना में निर्यात बढ़ाने में कोई सफलता नहीं मिली।

तृतीय योजना के प्रारम्भ में ही निर्यात बढ़ाने की तीव्र आवश्यकता का अनुभव किया गया क्योंकि देश के विदेशी विनिमय कोष बहुत घट गये थे। सरकार ने 1962 में आयात निर्यात नीति (मुदालियर) समिति नियुक्त की जिसने निर्यातों के सम्बन्ध में निम्न सुझाव पेश किये :-

(1) निर्यात के लक्ष्य को निर्धारित कर देने से ही कार्य समाप्त नहीं हो जाता बल्कि उन्हें प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहन कार्यक्रम भी होने चाहिए। समिति ने सुझाव दिया कि उद्योग व वस्तु के अनुसार अध्ययन करके उनके निर्यात बढ़ाने के उपाय ढूंढने चाहिए।

(2) निजी क्षेत्र में व्यापारियों व उत्पादों आदि की विशेष रियायतें जैसे प्रशुल्क में रियायत, अन्य प्रकार की प्रेरणायें आदि प्रदान करके निर्यात के लिए उत्साहित करना चाहिए।

(3) निर्यात पद्धति में सुधार करना चाहिए।

(4) निर्यात वस्तुओं पर 25 प्रतिशत भाड़े में छूट होनी चाहिए।

(5) निर्यात उत्पादों को कच्चा माल प्रदान करने की सुविधायें देनी चाहिऐ।

निर्यात नीति प्रस्ताव (जुलाई 1970) :-

30 जुलाई को भारत सरकार ने नई निर्यात नीति की घोषणा की। इस विषय में एक व्यापक निर्यात नीति प्रस्ताव संसद में पेश किया गया जिसमें देश के निर्यात क्षेत्र को कुछ प्राथमिकता देने को कहा गया। इस निर्यात नीति के मुख्य तत्व निम्नलिखित हैं :-

(1) निर्यात योग्य अतिरेक को बढ़ाने के लिए जिनकी देश में घरेलू मांग अधिक है, इस विषय में एक व्यापक निर्यात नीति प्रस्ताव द्वारा घरेलू उपभोग पर अस्थाई प्रतिबन्ध लगाने को कहा गया।

(2) इस प्रस्ताव ने यह विश्वास व्यक्त किया कि निवेशकर्ता अपनी पूंजी को निर्यात होने वाले माल के उत्पादन में लगायेंगे।

(3) विदेशी व्यापार के विकास में सहायता हेतु सरकार राष्ट्रीय व्यापारिक समुद्री बेड़े में विस्तार करने के भरसक प्रयास निर्धारित करेगी।

(4) निर्यात के प्रत्येक क्षेत्र की समस्याओं का गहन अध्ययन और विश्लेषण किया जायेगा ताकि प्रमुख उत्पादन जैसे कि कृषि, खनिज पदार्थ, वस्त्र, रासायनिक तथा इंजीनियरिंग उद्योगों में से दीर्घकाल में निर्यात बढ़ाये जाने की सामर्थ्य है और उनके विकास एवं सुधार के लिए कार्यक्रम बनाये जायेगें।

(5) सूती वस्त्र के आधुनिकीकरण की आवश्यकता को माना गया किन्तु वित्तीय समस्या के कारण केवल निर्यात करने वाले कारखानों में आधुनिकीकरण किया जायेगा।

(6) विदेशी मुद्रा कमाने में पर्यटन को प्रमुख और महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है।

भारत की आयात-निर्यात नीति सदैव आयात के माध्यम से निर्यात को बढ़ाने के प्रयास करती रही है। किसी वर्ष कुछ वस्तुओं के आयात पर नियन्त्रण लगा दिया जाता है तो किसी वर्ष हटा लिया जाता है। इस प्रकार हम आयात-निर्यात नीति को आयात व्यापार नीति कह सकते हैं।

आयात-निर्यात (1981-82) :-

आयात-निर्यात नीति 1981-82 में आयात से सम्बन्धित कुछ प्रमुख बातें निम्न प्रकार हैं :-

(1) वर्तमान आयात-निर्यात में ऐसा वस्तुओं के आधार न्यूनाधिक प्रतिबन्ध लगा दिया गया है जिनका अपेक्षाकृत कम उत्पादन करने से औद्योगिक अर्थव्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की सम्भावना नहीं है।

(2) खुले आयात की सूची में से 165 वस्तुओं को निकाल कर उसमें 63 वस्तुओं को जोड़ दिया गया है और वस्तुओं के आयात पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया है। इससे आयात विनिमय 150 करोड़ बचत की सम्भावना है।

(3) मशीनों तथा अन्य पूजीगत माल को खुली आयात सूची में रखा गया और पुरानी मशीनों के आयात की भी छूट दे दी गयी है। इससे स्वदेशी औद्योगिक संस्थायें विशेषकर लघु एवं कुटीर उद्योगों को लाभ पहुंचेगा।

(4) लघु उद्योगों के लिए पुर्नभरण लाईसेन्स सीमा को 50,000 रूपये से 1,00,000 रूपये कर दिया गया है। इसमें 4000 लघु इकाईयों को लाभ होगा।

(5) देश में पहली बार 'व्यापारिक प्रतिष्ठानों' की परिकल्पना परीक्षण के तौर पर प्रस्तुत की गयी है। इस 'व्यापारिक प्रतिष्ठानों' को कुछ निश्चित शर्त पूरा करने के बाद 40 लाख रूपये के तिदेशी मुद्रा विदेशों में गोदाम निर्माण हेतु प्रदान की जायेगी।

(6) राज्य औद्योगिक निगमों द्वारा आयातित माल वास्तविक उत्पादकों तक पहुंचने की व्यवस्था कर आयात लाईसेन्स के दुरूपयोग को रोकने की व्यवस्था की गयी है।

(7) प्रवासी भारतीयों को भारत में कारखाना लगाने हेतु विशेष सुविधा प्रदान की गयी हैं।

निर्यात नीति :-

इस वर्ष की निर्यात नीति वही है जो पिछले वर्ष थी। इसमें विकल्पों के अभाव में कोई विशेष परिवर्तन नहीं किया गया है। चांदी के बने गहनों, हड्डी, चूरा खांससारी, गेहूँ से बने पदार्थ आदि के निर्यात पर भी प्रतिबन्ध लगाया गया है। विदेशी व्यापारीकरण भारत में बन्दर, गाय, सांड तथा अन्य उपयोगी एवं अलभ्य वस्तुओं का आयात प्रजनन के उपयोग के बहाने करते हैं। उनका प्रयोग वैज्ञानिक अनुसंधान तथा मांस भक्षण के लिए किया जाता है। भारत में दूध की कमी है। अतः दुधारू पशुओं के निर्यात पर रोक लगा दी गयी है।

देश में बनी वस्तुओं के निर्यात को प्रोत्साहन देने के उद्देश्य से पर्यटकों को पिछले वर्ष की तुलना में इस वर्ष दुगना सामान लाने की अनुमति दी गयी है।

वर्तमान आयात निर्यात नीति समय की आवश्यकता के अनुकूल हैं फिर भी इसमें अनेक कमियाँ हैं, जिसका विवरण निम्न प्रकार हैं :-

(1) नीति दीर्घकालीन होनी चाहिए। भारत की आयात निर्यात नीति अल्पकालीन है।

(2) सरकार को राज्य व्यापार निगम को अधिक सक्षम बनाने पर ध्यान देना चाहिए।

(3) पड़ोसियों एवं अर्द्धविकसित देशों के लिए कुछ विशेष व्यापारिक सम्बन्ध होने चाहिए।

(4) भारत में बने पदार्थों को नमूने के तौर पर विदेश भेजने के लिए नियम उदार होने चाहिए।

वास्तव में भारत की आयात निर्यात नीति देश की तात्कालिक आवश्यकताओं पर आधारित है, लगता है कि दीर्घकालीन परिप्रेक्ष्य में समन्वित नहीं है।

आयात-निर्यात नीति (1982-83) :-

भारत सरकार की आयात-निर्यात नीति 1982-83 को वाणिज्य मंत्री श्री शिवराज वी0 पाटिल ने 5 अप्रैल 1982 को सदन के पटल पर प्रस्तुत किया। इस आयात निर्यात नीति में अनेक पुराने और परम्परागत शीर्षकों को परिवर्तित कर दिया गया।

उदाहरणार्थ :- List of banned items की Limited permissible items तथा List of absolute banned items की जगह List of restricted items की जगह List of automatic permissible items का प्रयोग किया गया।

संक्षेप में, इस आयात निर्यात नीति की कुछ प्रमुख विशेषतायें निम्न प्रकार हैं :-

(1) स्वतन्त्र व्यापार क्षेत्र में स्थित ऐसी इकाईयों को लाईसेंस से मुक्त कर दिया गया है जिनका निर्यात उत्पादन शत-प्रतिशत है।

(2) लघु इकाईयों उत्पादन को बढ़ावा देने के लिए 100 मदों के आयात को इसके अन्तर्गत रख दिया गया है।

(3) तकनीकी विकास को बढ़ावा देने के लिए तकनीकी विकास कोष की सीमा को 2.5 लाख रूपये से बढ़ाकर 5.0 लाख रूपये कर दिया गया है।

(4) प्रवासी भारतीयों को भारत में उद्योग लगाने के लिए विशेष सुविधा दी गयी है। प्रवासी भारतीय उपार्जित विदेशी विनिमय से सम्पूर्ण मशीनरी इस नीति के अन्तर्गत आयात कर सकता है।

(5) घरेलू उत्पादन को बढ़ावा देने के दृष्टिकोण से इसकी श्रेणी में 5 पूंजीगत तथा 33 कच्चे माल की मदों को हटा लिया गया है।

(6) निर्यात को प्रोत्साहन देने के दृष्टिकोण से निर्यातकों को अनेक प्रकार की रियायतें प्रदान की गयी हैं।

(7) सौर ऊर्जा को विकसित करने के लिए इसके अन्तर्गत मशीनरी आदि निर्यात करने की छूट दी गयी है।

(8) निर्यातकों की भांति आयातकों को भी रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया द्वारा कोड नम्बर दिया जायेगा।

आयात-निर्यात नीति (1985-86) :-

12 अप्रैल 1985 को भारत के वाणिज्य मंत्री द्वारा पहली बार तीन वर्षों के लिए आयात निर्यात नीति को घोषित किया गया। इस नीति के प्रमुख लक्षण निम्न प्रकार हैं :-

(1) निर्यातों एवं आवश्यक आयातों की प्रक्रिया को सरल बनाया जायेगा।

(2) आयात निर्यात के रिकार्ड के लिए पासबुक की प्रथा प्रचलित की गयी।

(3) 5 से 10 करोड़ रूपये का निर्यात करने वालों के लिए अपना टेलीफोन एक्सचेंज रखने की सुविधा दी गयी।

(4) आयात निर्यात बैंकों की स्थापना की गयी।

(5) हीरे-जवाहरात, सिले-सिलाये कपड़े, दस्तकारी के सामान आदि के निर्यात को प्रोत्साहन देने की व्यवस्था की गयी।

इन सब सुविधाओं द्वारा निर्यात में आशातीत वृद्धि होने की आशा की गयी।

आयात निर्यात नीति (1991-92) :-

4 जुलाई 1991 को वाणिज्य मंत्री श्री पी0 चिदम्बरम् ने 1991-92 की नई आयात निर्यात नीति की घोषणा की। सरकार ने प्रशासनिक नियन्त्रणों एवं लाईसेन्सों के बन्धन में फँसी दशकों पुरानी व्यापार नीति में व्यापक सुधारों की घोषणा करके विदेशी व्यापार नीति में मूलभूत परिवर्तन किया गया, जिसे भारतीय सन्दर्भ में क्रान्तिकारी परिवर्तन कहा जायेगा।

इस व्यापार नीति की कुछ प्रमुख विशेषतायें निम्न प्रकार हैं :-

(1) नगद क्षतिपूर्ति योजना (सीसीएल) को निलम्बित कर दिया गया है।

(2) पुर्नसंभरण लाईसेन्स योजना (आरईपी) निर्यात सम्बन्धी आयात का प्रमुख यन्त्र होगा अब (EXIMSCRIP) कहा जायेगा और इसके अतिरिक्त स्वतन्त्र खरीद फरोख्त की इजाजत होगी।

(3) सभी प्रकार के निर्यातकों के लिए एक ही प्रकार की आरईपी होगी जो 30 प्रतिशत के बराबर होगी। यह दर पहले 5 से 20 प्रतिशत के बीच थी।

(4) नयी आरईपी योजना ऐसे नये निर्यातकों को प्रलोभन देने में सहायक होगी जिनकी आयात तीव्रता कम होगी जैसे कृषिगत वस्तुएं।

(5) सभी प्रकार के पूरक लाईसेन्सों छोटे स्तर के उद्योगों तथा जीवन रक्षक दवाईयों के औजारों को छोड़कर समाप्त कर दिया गया है।

(6) निर्यातकों को आयात के लिए दिये गये अग्रिम लाइसेन्स समाप्त किये गये हैं।

(7) निर्यात गृहों के सभी अतिरिक्त लाइसेन्सों को समाप्त कर दिया गया है।

नयी व्यापार नीति के मुख्य उद्देश्य प्रशासनिक नियन्त्रणों को बाजार की शक्तियों से प्रतिस्थापित करके व्यापारियों और उद्योगपतियों को ऐसा अवसर प्रदान करना है ताकि वे आधुनिक व्यापारिक भारत का निर्माण कर सकें और खुली अर्थव्यवस्था की चुनौतियों का कुशलतापूर्वक सामना कर सकें।

आयात निर्यात नीति (1992-97) :-

भारत सरकार की आयात निर्यात नीति 5 वर्षों के लिए 31 मार्च 1992 को घोषित की गयी किन्तु नये सुधारों की घोषणा करते हुए 31 मार्च 1993 को पुनः नयी आयात निर्यात नीति घोषित की गयी जिसकी चर्चा आगे की जायेगी।

1992 की आयात निर्यात नीति के प्रमुख उद्देश्य इस प्रकार थे :-

(1) भारत के विदेशी व्यापार के वैश्वीकरण के लिए आधारभूत ढांचा तैयार करना।

(2) भारतीय उद्योगों की उत्पादकता, आधुनिकता और प्रतिस्पर्धात्मक शक्ति में इस प्रकार की प्राप्ति करना ताकि निर्यात अजन की क्षमता में वृद्धि हो सके।

(3) अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की गुणवत्ता प्राप्त करना ताकि अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में भारतीय उत्पाद की छवि धूमिल न हो।

(4) ऐसा वातावरण तैयार किया जाये कि निर्यात बढ़ाने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय बाजार से कच्चा माल, मध्यवर्ती वस्तुओं, पूंजीगत सामान आदि सुगमता से मिल सके।

(5) ऐसा क्षेत्र में उपलब्ध क्षमता का उपयोग करने के लिए सरकार ने निर्यात सम्वर्द्धन पूंजीगत वस्तु (Export Promotion Capital Grosses, EPCG) नामक एक नई योजना घोषित की। जिसके तहत वकीलों, चिकित्सकों, पत्रकारों, कलाकारों के पूंजीगत वस्तुओं के आयात पर सीमा शुल्क 25 प्रतिशत से घटाकर 15 प्रतिशत कर दी गयी है।

एक अन्य घोषणा के अनुसार सरकार ने रूपये की पूर्व परिवर्तनशीलता तथा शुल्क मुक्त लाइसेन्स के कारण कुछ निर्यातकों को होने वाली क्षति की भरपाई का निर्णय लिया है, जो निर्यातक 1 मार्च 1993 अर्थात रूपया का पूर्ण परिवर्तनशीलता से पूर्व निर्यात करके भुगतान प्राप्त कर चुके थे किन्तु शुल्क मुक्त आयात के अन्तर्गत आयात नहीं कर पाये थे उन्हें प्रत्येक आयात लाइसेन्स के 8 प्रतिशत के बराबर नकद राशि प्रदान करने का निर्णय लिया गया।

इसके अतिरिक्त जिन्होने 1 मार्च 1993 से पूर्व अपने निर्धारित लक्ष्य पूरे कर लिये थे परन्तु जिन्होने अपने निर्यात के आधार पर प्राप्त Exim Scrips का लाभ नहीं उठाया था उन्हें सरकार ने इन लाईसेन्सों का जमा करने का एक और अवसर दिया जिसके अन्तर्गत उन्हें इन पत्रों पर 20 प्रतिशत का प्रीमियम प्राप्त होगा।

रूपये की पूर्व परिवर्तनशीलता के बाद अनेक परिवर्तन हुए हैं और आगे होंगे क्योंकि वैश्वीकरण का लाभ तभी मिलेगा, जब हम विश्व की बदली हुई परिस्थितियों के साथ-साथ अपने को जल्दी-जल्दी समायोजित करते रहें।

आयात निर्यात नीति (1997-2002) :-

भारत के विदेशी व्यापार क्षेत्र को 1997-2002 की आयात निर्यात नीति के नये प्रावधानों से और अधिक उदार बनाया गया है। इन परिवर्तनों में हमारी निर्यात सम्बन्धी प्रतिस्पर्धामकता को सुधारने और सौदों की लागत तथा विलम्ब को कम से कम करने पर बल दिया गया है। मौजूदा निर्यात प्रोत्साहन योजना को मजबूत बनाया गया है। शुल्क पात्रता पासबुक योजना का निर्यात बढ़ाने को एक अधिक कारगर साधन बनाया गया है। जिसके लिए बुनियादी सीमा शुल्क को अतिरिक्त विशेष सीमा शुल्क को निष्प्रभावी बनाने पर जोर दिया गया है। लगभग 2000 मदों के लिए शुल्क पात्रता पासबुक की दरों को अन्तिम रूप दे दिया गया है।

निर्यातकों को अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा मूल्यों पर आसानी से और समय पर कच्चा

माल उपलब्ध कराने और बड़े विदेशी क्रेताओं द्वारा भारत से भारी मात्रा में आयात को सुविधाजनक बनाने के लिए निजी क्षेत्र में 'बॉडिड' गोदाम स्थापित करने की अनुमति देने का फैसला किया गया है।

निर्यात सम्वर्धन पूंजीगत माल योजना के अन्तर्गत निर्यात उत्पादन के लिए शुल्क मुक्त आयात की सीमा को 20 करोड़ रूपये और 5 करोड़ रूपये से घटाकर, कृषि और सम्बन्ध उत्पादों, परिधानों, इलैक्ट्रानिक सामान, खेलकूद का सामान, खिलौनों, चमड़े का सामान और हीरे जवाहरात जैसे क्षेत्रों के लिए करोड़ों रूपया कर दिया गया है। इस सम्बन्ध में जारी किये जाने वाले लाइसेंसों के मूल्यों में 10 प्रतिशत की घट बढ़ के लिए स्वतः वैधता की सुविधा उपलब्ध है। लाइसेंन्स सम्बन्धी क्रियाओं को विकेन्द्रीकृत किया जा रहा है और विदेश व्यापार यहां निदेशालय के कार्यालयों में पूरे कामकाज को शीघ्र ही कम्प्यूटरीकृत कर दिया जायेगा।

आयात निर्यात नीति (2002-2007) :-

दसवीं योजना के अन्त तक (मार्च 2007 तक) देश के कुल निर्यातों को 80 अरब डॉलर के सालाना लक्ष्य तक पहुंचाने तथा विश्व व्यापार में भारत की हिस्सेदारी को 0.67 प्रतिशत के मौजूदा स्तर से बढ़ाकर 1.0 प्रतिशत करने के नये प्रावधानों एवं प्रोत्साहनों के साथ 2002-07 के लिए नई आयात निर्यात नीति की घोषणा केन्द्रीय वाणिज्य एवं उद्योग मंत्री मुरासोली मारन ने 31 मार्च 2002 को की। निर्यात पर से परिमाणात्मक प्रतिबन्धों की समाप्ति, कृषिगत निर्यातों को विशेष प्रोत्साहन, विशेष आर्थिक क्षेत्रों में सुविधाओं का विस्तार, नये आकर्षणों के साथ ड्यूटी एनटाइटेलमेंट पासबुक व एक्सपोर्ट प्रमोशन कैपिटल गुड्स स्कीम को जारीकरना, हार्डवियर क्षेत्र के निर्यात सम्बर्धन के लिए नया पैकेज, कॉटेज सेक्टर एवं हस्तशिल्प पर विशेष फोकस तथा विस्तृत मार्केट एक्सेस इनीशिएटिव योजना तथा बाजार विस्तार हेतु अफ्रीका पर फोकस आदि इस नई Exim Policy की प्रमुख विशेषतायें हैं।

देश के निर्यातों को 46 अरब डॉलर के मौजूदा स्तर से 2006-07 तक 80 अरब डॉलर के स्तर तक पहुंचाने के लिए निर्यात में 11.9 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि का लक्ष्य इसमें अन्तर्निहित है।

प्राचीन भारत में सैन्य शिक्षा एवं उसका महत्व

- ज्ञानेन्द्र प्रसाद शर्मा
वरिष्ठ प्रवक्ता, इतिहास विभाग

वेदों की रचना के पूर्व वैदिक काल में आर्य असुरों से युद्ध में लिप्त थे इसलिए सैनिक व्यवसाय अवश्य ही लोकप्रिय रहा होगा। अश्वारोहण तथा रथ परिचालन में आर्यों की श्रेष्ठता युद्ध में उनकी विजय की मुख्य कुंजी थी। अतः सैनिक वर्ग को इसकी शिक्षा देने में पर्याप्त समय अवश्य लगाया जाता रहा होगा। रथ प्रतियोगिता इस काल में बड़ी लोकप्रिय थी। धनुष-बाण, ढाल, गदा तथा बर्छे इस काल में युद्ध के मुख्य आयुध थे। पैदल सैना को इसके परिचालन की शिक्षा अवश्य दी जाती रही होगी। परवर्ती वैदिक साहित्य को देखने से पता चलता है कि सबको निर्भयता की शिक्षा देने वाले ऋषि लोग अपने गुरूकुलों में बैठे हुए ब्रह्मचारियों को वेद का पाठ पढ़ाते हुए युद्ध की शिक्षा भी साथ-साथ देते थे। युद्ध विद्या की शिक्षा का महत्व इतना बढ़ गया था कि वैदिक आर्य ऋषियों को इस विद्या से सम्बन्धित एक अलग ग्रन्थ की रचना करनी पड़ी जिसे उन्होंने यजुर्वेद के उपवेद के रूप में कल्पित किया और उसका नाम धनुर्वेद रखा। इसी धनुर्वेद को भारतीय साहित्य में कही क्षत्रविद्या, कहीं अस्त्र विद्या, कहीं धनुर्विद्या आदि नामों से उल्लिखित किया गया है। इसमें युद्ध शास्त्र सम्बन्धी शस्त्रों एवं व्यूह रचना आदि की शिक्षा दी जाती थी। अंगिरसों के गुरूकुल में तो कई शस्त्र और अस्त्र बनाये जाते थे। इस प्रकार से प्राचीन काल के गुरूकुलों में धनुर्वेद पढ़ाया जाता था।

महाकाव्यों के काल में सैनिक प्रशिक्षण का यह क्रम आश्रम पद्धति में भी प्रचलित रहा। इसके साथ इस काल में राजधानी के तथा अन्य प्रमुख नगरों में शिक्षण संस्थाएँ स्थापित होने लगी थीं। रामायण काल के अयोध्या में एक शिक्षण संस्था की स्थापना की गई थी। महाभारत काल के हस्तिनापुर में भीष्म ने एक शिक्षण संस्था की स्थापना करवायी थी जहाँ कौरवों-पांडवों ने विविध प्रकार के सैन्य प्रशिक्षण प्राप्त किये थे। आश्रमों अथवा गुरूकुलों का प्रशिक्षण जन-साधारण को सुलभ था जिसकी जैसी इच्छा होती थी वह आश्रम में जाकर वैसी विद्या ग्रहण करता था। आश्रमों की शिक्षण संस्थाऐं राजाओं के लिए दुश्प्रवेश्य नहीं थीं। आप्रवेशित सभी विद्यार्थी समान थे। महाभारत काल में भरद्वाज मुनि के आश्रम में द्रोणाचार्य और द्रुपद ने एक ही साथ सैन्य प्रशिक्षण प्राप्त किया था। राजा लोग नगर में निर्मित संस्थाओं के लिए 'व्यायामशाला' शब्द का प्रयोग करते थे और व्यायामशाला में प्रशिक्षण प्राप्त करते हुए सैनिक शिक्षा को क्रीड़ा शब्द से सम्बोधित करते थे। इस व्यायाम विद्या की शिक्षा में मल्ल विद्या की साधना भी आवश्यक थी। प्रत्येक राजकुल में व्यायाम के लिए उपयोगी सब साधन रखे जाते थे। इस प्रकार व्यायामशाला में धनुष,

चक्र, ढाल, तलवार, पण्यायुध आदि प्रकार के हथियार भी होते थे। छत्तीस आयुधों की जो सूची बाद के ग्रन्थों में प्राप्त होती है, वह गुप्तकाल में कहाँ तक निश्चित थी, कहा नहीं जा सकता। समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति में फरसा, बाण, साँगी, शक्ति, भाला, तलवार, तोमर, भिन्दिपाल, तीर आदि का वर्णन है। यहाँ रथचर्या का विशेष उल्लेख है, यद्यपि उस युग की युद्धविद्या में रथों का उपयोग शकों की तेज घुड़सवार सेनाओं के बाद घटता जा रहा था। हाथियों और घोड़ों पर विशेष बल दिया जाता था जैसा कि 'हर्षचरित' में दर्पशात और कादम्बरी में इन्द्रायुध के वर्णन से प्रकट होता है। हस्तिशिक्षा और घोड़ों के लक्षण भी जानना राजकुमार के लिए आवश्यक था। दुर्ग को जीतने के लिए सुरंग तोड़ना आवश्यक था। व्यायामशालाओं में पुरूषों के लक्षण, घोड़े, हाथियों के लक्षण, विष उतारना और तैरना, कूदना, वृक्ष आदि पर चढ़ना सीखना भी आवश्यक था।

चन्द्रापीड़ तलवार का ऐसा हाथ मारता कि ताड़ का पेड़ कटकर ढेर हो जाता था। उसके बाण चट्टान को भी छेद देते थे। पहले घास के बने मनुष्य या मुआल मिट्टी या पटरे के बने लक्ष्य पर ही निशाना लगाना सिखाया जाता था। जब ये शिष्य सीखकर तैयार हो जाते थे तब उन्हें शिक्षक राजा के सामने उपस्थित करता था। राजा प्रसन्न हो उन्हें इनाम में अच्छे-अच्छे रथ, हाथी, धन-धान्य, अशरफी, नौकर, स्त्री और खेतवारी देता था। व्यायामशाला में राजा को मल्लयुद्ध का अभ्यास कराने वाला ज्येष्ठ मल्ल राजयुध्वा कहलाता था। कौटिल्य ने व्यायाम को राजा की दिनचर्या का आवश्यक अंग कहा है। हर्ष भी इस प्रकार का शस्त्राभ्यास करता था। नियमपूर्वक शस्त्राभ्यास करने से उसके शरीर पर धनुष की डोर की रगड़ खाने से काला प्रकोष्ठ पड़ गया। देश में सैनिक शिक्षा की महत्ता इतनी बढ़ गई कि देश के कतिपय नगर अपने सैनिक प्रशिक्षण के लिए प्रसिद्ध हो गये। उन नगरों में तक्षशिला एक था जो सैनिक शिक्षा का प्रसिद्ध केन्द्र माना जाता था। यहाँ के आचार्य सैन्य प्रशिक्षण देने में इतने कुशल होते थे कि सात दिन में ही शिक्षार्थी को पारंगत बना सकते थे। वहाँ क्षपवेधी, शब्दबेधी शरवेधी और बालबेधी बाण चलाने की विधियों का प्रशिक्षण दिया जाता था। 9वीं शताब्दी में दक्षिण में एक लेख मिला है जिसमें एक ऐसे ही शिक्षक को अश्व परिचालन में अद्भुत प्रतिभा वाला कहा गया है। यह ज्ञात नहीं है कि उपर्युक्त शिक्षक निजी सैनिक पाठशाला चला रहा था या राष्ट्र कूटों के किसी सरकारी सैनिक विद्यालय में अध्यापक था।

इन शिक्षण संस्थाओं के अतिरिक्त देश में सैनिक शिक्षा के गैर सरकारी साधन भी थे। 'अर्थशास्त्र' में स्पष्ट लिखा है कि प्रत्येक नागरिक आवश्यकता पड़ने पर अपनी रक्षा कर लेने के लिए तत्कालीन आयुधों को रखता था और उसके परिचालन की शिक्षा ग्रहण करता था। इसके लिए कोई सैनिक-विद्यालय नहीं होते थे। ग्राम वृद्धों से ही युवक धनुष बाण, लाठी और बर्छा चलाना सीख लेता था। यवन इतिहासकारों ने सिकन्दर के आक्रमण

के समय का विवरण दिया है उससे यह बात सिद्ध हो जाती है कि भारत के अनेक भागों में यही बात थी। पंजाब के अनेक जनपदों या कठों, मालवों शिवियों आदि में तो प्रत्येक बालक को ऊँची सैनिक शिक्षा दी जाती थी। इन गांवों को राज्य की ओर से कर मुक्त कर दिया जाता था। बदले में ये राजकीय सेना में जवान भेजते थे। प्राचीन काल में सैन्य प्रशिक्षण का महत्व इतना बढ़ गया था कि सैन्य प्रशिक्षण के पूर्व शिक्षार्थी का धनुर्वेदिक अथवा सैनिक उपनयन संस्कार होता था। तत्पश्चात् उसे सैन्य विज्ञान का प्रशिक्षण दिया जाता था। इस संस्कार का सबसे महत्वपूर्ण अंग था वैदिक मन्त्रों की ध्वनि के बीच शिक्षार्थी को शस्त्र प्रदान करना। पूर्व काल में सैनिक शिक्षा पर क्षत्रियों का एकाधिकार न था, अतः वशिष्ठ ने लिखा है – ब्राह्मण को धनुष, क्षत्रिय को असि, वैश्य को भाला और शूद्र को गदा प्रदान करनी चाहिए।

सैन्य प्रशिक्षण से जब स्नातक सैन्य विज्ञान में पूर्ण निष्णात हो जाता था तब उसका सैनिक-समावर्तन संस्कार भी किया जाता था जिसे छुरिका-बन्ध भी कहा जाता है। शिक्षा समाप्ति के चिन्ह रूप में छुरी प्रदान की जाती थी। 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ में राजपूताना के राजपूतों में यह संस्कार खड्ग बधाई नाम से जो छुरी – बन्धन का ही प्राकृतिक रूप है, खूब प्रचलित था। यह संस्कार विवाह के पूर्व होता था। संभवतः यह संस्कार उच्च सामन्त परिवारों में प्रचलित था। इस प्रकार से प्राचीन भारत में राजकुमारों तथा सर्वसाधारण सैन्य विज्ञान के इच्छुक युवकों को चार प्रकार के धनुर्वेद का प्रशिक्षण दिया जाता था। मुक्त, अमुक्त, मुक्तामुक्त तथा यन्त्रमुक्त ये धनुर्वेद के चार भेद हैं। छोडे जाने वाले बाण को मुक्त कहते हैं, जिन्हें हाथ में लेकर प्रहार करते थे जैसे – खड्गादि को अमुक्त कहते थे। जिस अस्त्र को चलाने और समेटने की कला हो वह अस्त्र मुक्तामुक्त कहलाता था, जिसे मन्त्र पढ़कर चलाया जाता था उसके उपसंहार की विधि मालूम न हो, वह अस्त्र मन्त्रयुक्त कहा गया है। धनुर्वेद को भारतीयों ने छठे वेद के रूप में स्वीकार कर उसकी महत्ता स्वंय सिद्ध कर दी है। प्राचीन भारत में यह विद्या उन्नति के शिखर पर थी और शूर-वीरता का इसी से सम्बन्ध था। भारतीय ग्रन्थों में कहीं यह चौदह, कहीं अठारह विद्याओं में परिगणित किया गया तो कहीं जैन और बौद्ध साहित्य में इसे 72 और 64 कलाओं में महत्वपूर्ण स्थान दिया गया।

बृहस्पति के अनुसार, राजत्व की प्राप्ति के लिए शारीरिक एवं मानसिक प्रतिभा का विकास एवं सन्तुलन आवश्यक था। अतः राजपुत्र की शिक्षा के प्रबन्ध की ओर ध्यान देते हुए उनका कथन है कि 25 वर्ष पर्यन्त उसे अध्ययन एवं क्रीड़ा करनी चाहिये। क्रीड़ा शब्द का प्रयोग सामान्य मनोरंजन न होकर राजोचित चिन्ह क्रीड़ा-अर्थात् अश्वधावन, रथ धावन आदि था। इस प्रकार से प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति में सैन्य विज्ञान का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण था।

मौर्यकालीन न्यायिक पद्धति में 'साक्षी एवं साक्ष्य' का महत्व

-डॉ0 राजेश गर्ग
वरिष्ठ प्रवक्ता, इतिहास विभाग

भारतीय शासन प्रणाली में सदैव ही न्याय व्यवस्था का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। दोषमुक्त न्याय प्रणाली को राज्य का प्राण समझा जाता था। जो राजा अपनी प्रजा को न्याय प्रदान नहीं कर सकता था, उसका विनाश निश्चित था। राजा का सर्वप्रमुख कर्तव्य अपराधियों का दमन करके निष्पक्ष न्याय-प्रणाली की प्रतिस्थापना था। महाभारत के अनुसार न्याय-व्यवस्था का यदि उचित प्रबन्ध नहीं होता तो राजा को स्वर्ग तथा यश की प्राप्ति नहीं हो सकती।[1] मनु के अनुसार जो राजा निरपराधी को दण्डित करता है और अपराधी को मुक्त करता है, वह नरक का भागीदार होता है।[2] याज्ञवल्क्य का कथन है कि न्याय के निष्पक्ष प्रशासन से राजा को वही फल प्राप्त होता है जो यज्ञ आदि करने से प्राप्त होता है।[3]

सत्य की खोज ही प्राचीन भारतीय न्याय व्यवस्था का प्रमुख उद्देश्य था। अतः न्याय कार्य में न्यायकर्ताओं एवं अन्य विद्वानों द्वारा निर्णय लेने से पूर्व चिंतन मनन को प्रमुखता दी जाती थी। साथ ही न्याय प्रक्रिया में नैतिकता, निष्पक्षता और प्रमाणों की पर्याप्तता पर अत्याधिक बल दिया जाता था।[4]

मौर्य युगीन न्यायिक प्रक्रिया में साक्षियों का भी अत्याधिक महत्व था। वाद का निर्णय साक्षियों द्वारा बताये गये वृतान्त के आधार पर होता था। न्यायालय में साक्षी को बुलाये जाने पर उन्हें 'भृति' प्रदान की जाती थी। जिसका परिमाण वाद राशि का अष्ट भाग होता था। भृति के साथ-साथ यात्रा व्यय पाना भी साक्षियों का अधिकार होता था। जिसका निर्धारण वाद राशि के अनुसार किया जाता था। जिसका भुगतान पराजित पक्ष द्वारा होने का प्रावधान था।[5]

कौटिल्य ने साक्षियों का वर्गीकरण करते हुए इन्हें तीन भागों में विभक्त किया है - लिखित प्रमाण, साक्षी प्रमाण और भोग (कब्जा) प्रमाण। अर्थशास्त्र में साक्षी की विश्वसनीयता के संबंध में भी विशद् वर्णन मिलता है।[6] साक्षी को प्रात्ययिक (विश्वसनीयता), शुचि (पवित्र या ईमानदार) और अनुमत (प्रतिष्ठित) होना चाहिए। सामान्यतः तीन साक्षियों का होना उचित माना जाता था, जिनमें से कम से कम एक दोनों ही पक्षों द्वारा स्वीकार्य हो। ऋण सम्बन्धी वाद में तो किसी भी स्थिति में एक साक्षी पर्याप्त नहीं होता था और जिन साक्षियों के कथन पर सन्देह होता था उन्हें प्रमाणिक नहीं माना जाता था। कौटिल्य ऐसे संदिग्ध प्रकार के साक्षियों को वर्गीकृत करते हैं :-[7]

(1) स्याल	पत्नी का भाई।
(2) सहाय	ऐसा साक्षी जो किसी पक्ष की सेवा में हो।
(3) आबद्ध	कैदी या किसी के वंशी व्यक्ति।

(4) धनिक जिसने किसी भी पक्ष को धन ऋण स्वरूप प्रदान किया हो।

(5) धारणिक जिसने किसी भी पक्ष से धन ऋण स्वरूप लिया हो।

(6) वैरी शत्रु।

(7) न्यंगड़ आश्रित व्यक्ति।

(8) धृतदण्ड जो पूर्व में दण्डित हुआ हो।

कौटिल्य ने कुछ व्यक्तियों के लिए साक्ष्य देने का विधान तभी किया है जबकि वाद का सम्बन्ध उनके अपने ही वर्ग के व्यक्ति के साथ हो।

(1) राजा

(2) श्रोत्रीय

(3) ग्रामभृतक – ग्राम्य सेवा में नियुक्त व्यक्ति

(4) कुष्ठी–कोढ़ी

(5) व्रणी – जिसका शरीर व्रणों से ढ़का हो।

(6) पतित

(7) चाण्डाल

(8) कुत्सितकर्मा – जो निम्न कोटि के कार्यों में संलग्न हो।

(9) अन्धा

(10) बहरा

(11) अहंकारी

(12) स्त्रियाँ

(13) राजपुरूष

यदि वाद आक्रमण करने, चोरी करने या भगा ले जाने से सम्बन्धित होता था तो उसमें स्याल, शत्रु और सहाय के अतिरिक्त अन्य सभी प्रकार के व्यक्तियों की साक्षियाँ स्वीकार्य थीं। गुप्त समझौतों से सम्बन्धित वादों में ऐसे स्त्री और पुरूषों की साक्षियाँ भी ग्राहय थीं जो उसमें प्रत्यक्षदर्शी रहे हों परन्तु राजा और तापस की साक्षी मान्य नहीं होती थी।

मौर्यकाल में गवाह की विश्वसनीयता, पवित्रता, निष्पक्षता आदि को सुनिश्चित किये जाने पर भी बल दिया जाता था। उससे यह अपेक्षा की जाती थी कि साक्ष्य देते समय केवल सत्य वचनों का ही अनुपालन करेगा। कौटिल्य ने इस संदर्भ में उल्लेखित किया है कि साक्षी को सर्वप्रथम शपथ ग्रहण करनी होती थी। जिसमें साक्षी को ब्राह्मण, जल से भरे कुम्भ और अग्नि के सम्मुख ले जाकर कहा जाये –

– यदि साक्षी ब्राह्मण वर्ग से हो तो 'सत्य-सत्य कहो'

– यदि साक्षी क्षत्रिय या वैश्य वर्ण से हो तो 'असत्य वचनों पर तुम्हे यज्ञ और पुण्य कार्यों के फल प्राप्त नही होंगे और युद्ध में विजय प्राप्त होने पर भी तुम खप्पर लेकर भिक्षा याचन हेतु विवश होगे।'

यदि साक्षी शूद्र वर्ण से हो तो "असत्य वचन पर तुम्हारा पुण्य फल राजा को प्राप्त होगा और राजा का पाप फल तुम्हें प्राप्त होगा।'

यदि साक्षियों में परस्पर मत विभिन्नता हो जाये तब निर्णय बहुमत के आधार पर किया जाये अथवा शुचि (पवित्र) और अनुमत दोनों की साक्षियों के आधार पर ही वाद निर्णय किया जाये।

अपने पक्ष को पुष्ट और सबल बनाने के लिए वादी और प्रतिवादी का ही उत्तरदायित्व माना जाता था कि वे न्यायालय के समक्ष साक्षियों को प्रस्तुत करें। फिर चाहे वाद से सम्बन्धित घटना को हुए कितना ही समय व्यतीत हो गया हो या साक्षी दूर देश में ही रहता हो और यदि साक्षी इन कारणों से या अन्य किसी कारण से न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने में असमर्थ हो या आनाकानी करता हो तो उसे न्यायालय के आदेश के माध्यम से उपस्थित होने के लिए विवश किया जाता था।

न्यायाधीशों से न्याय कार्य में निष्पक्षता की अपेक्षा रहती थी और उन्हें स्वयं के ऊपर नियंत्रण और संयम रखने तथा अनुचित व्यवहार न करने का निर्देश था। न्यायशास्त्रीय ग्रन्थों में न्यायाधीशों को न्याय कार्य करते समय भी विशेष सावधान रहने को इंगित किया गया है। न्याय कार्य में शिथिलता बरतने पर कौटिल्य ने न्यायाधीशों को भी दण्ड का भागी माना है। कौटिल्य के अनुसार जो न्यायाधीश वादी प्रतिवादी अथवा साक्षी को धमकाता अथवा परेशान करता है उसे दण्डित किया जाये।[8] जो न्यायाधीश पूछने योग्य बात न पूछता हो और नहीं पूछने वाली बात को पूछता हो, किसी बात को पूछ कर अधूरी ही छोड़ देता हो, ऐसी स्थिति में कौटिल्य ने उस न्यायाधीश के लिए मध्यम साहस दण्ड का प्रावधान किया था।[9] सन्तुलित न्याय के लिए यह आवश्यक था कि वादी, प्रतिवादी एवं साक्षी को व्यर्थ का कष्ट न हो और यदि न्यायाधीश साक्षी आदि को प्रभावित करने की चेष्टा करता हो तो उसे उत्तम साहस दण्ड दिया जाये।[10] ऐसे न्यायाधीश को न केवल दण्ड दिया जाये बल्कि उसे पदच्युत कर दिया जाना चाहिए।[11]

मौर्ययुगीन ब्राह्मण विचारधारा आधारित विधि संहिता की एक सर्वप्रमुख विशेषता उसका वर्ण विधान आधारित होना था।[12] जिसका दर्शन तत्कालीन साक्ष्य विधि, व्यक्ति, सम्पत्ति, प्रतिष्ठा आदि के प्रति घटित अपराधों के परिणामस्वरूप दिये गये दण्डों में होता है। साक्ष्य सम्बन्धी कानूनों में यह स्पष्ट विधान था कि जाति बहिष्कृत अर्थात अपने वर्ण कर्तव्यों से च्युत, व्यक्ति साक्षी नहीं बन सकता।[13] एक वर्ण के व्यक्ति को दूसरे वर्ण से संबंधित वाद में साक्षी न होने देने का विधान था। अर्थात ब्राह्मण-ब्राह्मण की, क्षत्रिय, क्षत्रिय की, वैश्य-वैश्य की, शूद्र-शूद्र की और स्त्री-स्त्री की गवाही दे सकती थी।[14] साथ ही यह भी उल्लेख किया था कि दासों और मृतकों की, जो निश्चय ही शूद्र वर्ण के होते थे, साक्षी न ली जाये।[15] साक्षी देने के लिए आये विभिन्न वर्णों के साक्षियों को भिन्न-भिन्न

प्रकार की शपथ दिलाई जाती थी और उनके प्रति व्यवहार भी भिन्न-भिन्न प्रकार से विहित होता था। [16]

इस प्रकार की न्यायिक प्रक्रिया में साक्षियों के कथनों पर आधारित निर्णय निश्चय ही अधिक उत्तरदायित्व पूर्ण एवं निर्दोष होते थे। वाद निर्णय में साक्ष्यों को महत्व प्रदान करना आधुनिक कालीन न्याय व्यवस्था का भी महत्वपूर्ण अंग है। मामले को निष्कर्ष तक पहुंचाने में निश्चय ही गवाहों की महत्वपूर्ण भूमिका होती थी किन्तु इनकी सुरक्षा के लिए अलग से कोई विशेष प्रावधान प्रभावी नहीं था। नागरिक सुरक्षा के अंतर्गत ही इनको सुरक्षा प्रदान थी। व्यावहारिकता में साक्ष्यों और गवाहों की जांच के लिए पुलिस व्यवस्था से अलग एक पृथक जांच एजेंसी की आवश्यकता थी।

संदर्भ :

1. महाभारत : शांतिपर्व, 69, 32
2. मनुस्मृति 8.128
3. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1.359-60
4. दीक्षितएं, वी0 आर0 आर0 हिन्दू एडमिनिस्ट्रेटिव इन्सटीट्यूशन, पृ0 - 265
5. योगी, भारतीय : कौटिल्य अर्थशास्त्र 3.1
6. योगी, भारतीय : कौटिल्य अर्थशास्त्र 3.1
7. पाण्डेय, डॉ0 श्यामलाल भारतीय राजशास्त्र प्रणेता, पृ0 - 132
8. कौटिल्य, अर्थशास्त्र, 4.9
9. कौटिल्य, अर्थशास्त्र 4.9
10. कौटिल्य अर्थशास्त्र 4.9
11. वही, 4.9
12. दत्त, बी0 एन0 : स्टडीज इन इन्डियन सोसीयल पोलीटी
13. विष्णु, VIII.2
14. मनु, VIII.18, याज्ञ0 11.19
15. मनु, VIII.70
16. गौतम, VIII.20-23, मनु VIII, 88-89

Effectiveness of Poverty Alleviation Programmes in India

Dr. Indu Sharma
Reader, Department of Political Science
D. A. V. (P.G.) College, Bulandshahr

Introduction

Poverty is a situation in which a person is unable to get minimum basic necessities of life, food, clothing and shelter. It refers to get the minumum consumption requirement of life, health and efficiency.

Poverty is determined on the basis of poverty line. According to Planning Commision of India, persons spending Rs.454 on consumption in urban areas and Rs. 328 in rural areas per month should be treated as falling within the poverty line. The number of persons living below poverty line in 1999–2000 was estimated to be 26.02 crores. Among them 19.32 crores are living in rural areas and 6.7 crores in urban areas.

There are some causes of poverty in India. First is, under utilisation of natural resources. A large part of our water, forest, energy and mineral resource is either unutilised or under utilised.

Second is, backwardness of agriculture :– Inadequate supply of water, costly fertilisers, HYV seeds and low level of technology are main reasons for backwardness of agriculture. As a result, farm productivity is low in India.

Third is Wide spread unemployment :– Poor and middle class of society is forced to live in pressure because of continuous rise in process of mass consumption goods. So a large section of people have been thrown below the poverty line.

Fifth is Rapid Rise in Population :- The size of India's population is big and it is also increasing at a very rapid rate. But the level of per capita income and consumption is not increasing much.

Social factors like literacy, large size of family, low inheritance and caste system are also responsible for prevalence of poverty ridden people, and last is ineffective planning. - In the past five decades, many poverty alleviation programmes were prepared.

Poverty Alleviation Programmes :–

The strategy of direct assault on poverty through rural development and rural employment programmes is of recent origin. Only with

the Fifth plan, poverty alleviation came to be accepted as one of the principal objective of economic planning in this country. During the seventies, number of special programmes for the rural poor were undertaken of which the important ones were : Small Farmers' Development Agency (SFDA), Marginal Farmers and Agricultural Labourers' Development Agency (MFAL) Drought-Prone Areas Programme (DPAP), Crash Scheme for Rural Employment (CSRE), Pilot Intensive Rural Employment Project (PIREP) and Food for Work Programme (FWP). None of these programmes comprehensively covered the whole country, though in certain parts of the country, some of these programmes operated simultaneously for the same target groups. Apart from this territorial overlap, the major limitation of these programmes was that they were reduced to mere subsidy-giving programmes, lacking any planned approach to enable the rural poor achieve a higher level of income. The element of adhocism in these programmes further reduced their effectiveness from the point of view of poverty alleviation. Hence, the need was felt for undertaking programmes which were not only far more comprehensive in coverage but could also make a direct assault on rural poverty.

The Latter Phase - Comprehensive Programmes :–

The Integrated Rural Development Programme (IRDP), The National Rural Employment Programme (NREP) and the Rural Landless Employment Guarantee Programme (RLEGP) were conceived keeping the objective of poverty alleviation in view. The IRDP was initially started in 1978–79 in 2,300 development block as a programme of total development. In sixth plan, the IRDP was extended to the entire coutry. The NREP also commenced at the same time as part of the sixth plan and aimed at helping that segment of population which depended largely on wage employment and had virtually no source of income during the lean agricultural period. The RLEGP was launched on August 15, 1983, with the objective of expanding the employment opportunities for the rural landless. However, with a view to make the implementation of these wage employment programmes more effective, NREP and RLEGP were merged into a single rural employment programme since April 1, 1989. The merged programme was named Jawahar Rozgar Yogana (JRY). Some other programmes aiming at poverty alleviation are : Programme of Development of Women and Children in Rural Areas, the Employment Assurance Scheme, the National Social Assistance Programme, the Swarna Jayanti Shahari Rozgar Yojana and Prime Minister's Rozgar Yojana. Although information is now available regarding the number of beneficiaries under

these programmes, it is difficult to assess their impact on the incidence of poverty.

The IRDP conceived as anit-poverty programme aimed at helping the small and marginal farmers landless labourers. It was thought by the planners that these people were poor because they possessed neither any productive assets nor any special skill. Therefore, the IRDP was designed to help the poor by creating new assets for them. These assets would include source of irrigation, bullocks and implements beside input like seeds and fertilizers for farming, animals for dairy and other animal husbandry activities and tools and training for cottage industries and handicrafts. The basic strategy was self–employment of the poor with the help of these assets so that they manage to earn enough to rise above the poverty line. During the Sixth Plan while the IRDP was concerned with the certain of new assets in the case of poor, the skill endorsement aspect was covered under the Training of Youth for Self–Employment (TRYSEM). The Programme Evaluation Organisation of the Planning Commisssion (PEO), the RBI, the NABARD and the Institute for Financial Management evaluated the performance of the IRDP during the first half of the 1980s.

At present, special programmes for employment generation are being implemented both in rural and urban areas for the purpose of poverty alleviation. The programmes for the rural poor include : Swarn Jayanti Gram Swarojgar Yojna (SGSY), Jawahar Gram Samridhi Yojna (JGSY). Recently a new scheme known as Employment Assurance Scheme (EAS) and Pradhan Mantri Grammoday Yojna (PMGY) were launched in 1999 and 2001 respectively. The objective of these scheme was to create wage employment for families below poverty line and improving the quality of life there.

Strategy of Poverty Alleviation :–

A careful examination of the poverty alleviation programmes reveals that the planners have made the assumption that the poor constitute a homogeneous category. The planners made no attempt to segment the group in terms of common characteristics and their requirements.

The Planning Commission setup in 1950 has been formulating Five Year Plans for India's development taking on overall view of the needs and resources of the country.

The first five year Plan (1951–56) aimed at achieving rapid industrialisation of the economy and bringing about greater equality in

income and wealth for the establishment of a socialistic pattern of society in India. It focused on the growth of basic and heavy industries, expansion in employment opportunities and increase of 25 percent in the national income. This plan increased by 12.5 percent in price level.

The Third five year Plan (1961–66) aimed at securing a marked advance towards self-sustaining growth. Agriculture was once again given top priority and about 35 percent of the outlay was allocated to this sector. The Plan aimed at increasing the national income by about 30 percent and the percapita income by about 17 percent.

The fourth five year Plan (1969–74) aimed at increasing national income by 5.5 percent creating economic stability, reducing inequalities in income distribution, and achieving social justice with equality. Simultaneous growth of both agricultural and industrial sectors was fully recognised under the fourth Plan.

The Fifth Five Year Plan (1974–79) was formulated when the economy was facing severe inflationary pressures. It mainly aimed at removal of poverty and attainment of self-reliance. The plan also aimed at an increase in employment opportunities, self–sufficiency, policy of minimum wages, removal of regional imbalances and encouragement of exports.

The Sixth five year plan (1980–85) was formulated after taking into account the achievements and shortcomings of the past three decades of Planning. Removal of poverty was the foremost objective of the plan, even though it recognized that this objective could not be achived in a short period of five years. This plan made a fairly convincing success. According to National sample survey, the proportion of people living below the poverty line declined from 48.3 percent in 1977–78 to 36.9 percent in 1984–85.

The seventh five year plan (1985–90) had three priorities of increasing food, work and productivity. The plan aimed at a significant reduction in the incidence of poverty and an improvement in the quality of life of the poor. However, this plan also failed to tally in achieving its targets. There was a severe set back on the agricultural front, in the manufacturing sector, in creating employment and in the balance of payments position of the country.

The Eighth five year Plan (1992–97) was supposed to be oriented towards employment generation. The Plan aimed at achieving an overall GDP growth rate of 5.5 percent of 6.5 percent, agricultural growth rate of 5 percent, industrial growth rate 7.5 percent, service sector growth rate of 8 percent to 10 percent and export growth rate

of 10 percent. Elimination of poverty was one of the major objectives of the eighth plan.

The Ninth five year Plan (1997–2002) is described as ambitious and growth-oriented. The Plan's thrust areas are : agriculture, employment, poverty and infrastructure. The ninth plan relies essentially on the trickle down effects of economic growth for poverty alleviation.

Indira Gandhi propounded 20 point programme in July, 1975 for reducing proverty and economic exploitation, and for the upliftment of the weaker sections of the society. But the programme was discontinued with the change of government when the Janta Party became the ruling party at the centre. But this programme was restructured and revised in August 1986. This programme aimed at eradicating poverty, raising productivity, reducing income inequalities, removing social and economic disparties and improving the quality of life.

State Poverty Alleviation Programmes :–

Several poverty alleviation programmes have been launched by the state government for the rural poor. The important programmes currently functioning are : IRDP, TRYSEM, Jawahar Rojgar Yojna for rural unemployment and under employed, and provides employment of 50 to 100 days in a year to at least one member in poor family. NREP, RLEGP, DPAP and DDP are another state poverty alleviation programmes.

Critical Evaluation of the Poverty Alleviation Programmes :–

The planners have claimed that under the Eighth Plan, strategy for poverty alleviation was modified keeping in view and past experiences. Hence the new strategy did not suffer from the weaknesses of the earlier approach. Most economists, however, do not subscribe to this view. They argue that the basic weaknesses in the approach still remain unrecognised at the governmental level. Making critical evaluation of the planners' approach to poverty alleviation goal some economists have pointed out the following limitations :

First, the income generation orientation of poverty alleviation programmes does not recognise the importance of increased flow of social inputs through family welfare, nutrition, social security and minimum needs programmes in alleviating conditions of poverty on a long-term basis.

Secondly, the programmes have done little for disabled, sick and socially handicapped individuals who cannot participate in normal economic activities. The strategy for poverty alleviation has also failed to do justice to women in intra-family distributions.

वाचन

Thirdly, income and employment - oriented poverty alleviation programmes put additional income in the hands of the poor which they can use for buying food. But these programmes do not ensure that the poor can really manage to get adequate food all the year round for the family with the increased income because this depends on the price, supply ease and time distribution of income.

Fourthly, the household approach focussed around self-employment enterprises or wage employment guarantees is not correct in the state of continuing demographic pressure and increasing smallness of the size of farm holding.

Fifthly, the present approach is nearly blind to the existence of secondary poverty. This condition in which earning would be sufficient for the maintenance of merely physical efficiency were it not that some portion of it is absorbed by other expenditure, either useful or wasteful such as drinking, gambling, inefficient housekeeping.

Sixthly, the poverty line crossing criterion for evaluating the success of the poverty alleviation programmes is insentive to the income changes occurring below poverty line.

Seventhly, many rural poor depend on natural resources for their livelihood. The government should have taken into consideration the implications of this environmental decay which unfortunately in the past it has not done.

Eighthly, the government has failed to make necessary changes in anti-poor laws and policies. These laws and policies harm particularly the tribals who depend on non-timber forest products for their subsistence and cash income.

Finally, the poverty alleviation programmes often ignore the consequences of the earning activities of the poor in terms of occupational health hazards and adverse ecological consequences.

So, the poverty alleviation programmes are undertaken in India, the structural constraints are so pervasive that the rich and middle classes manage to derive far more benefits than those for whom these programmes are apparently meant. The moral of the studies referred to above thus is that without making a radical change in the structure, that is the production relations, there is not much hope for the poor in the less developed countries like our own. The interventionist poverty alleviation programmes will continue to bypass the poorest of the poor in the same manner as the economic growth has done in the past. ●

Computers in Education – Then and Now

Dr. A. K. Sharma
Reader & Head, Department of Physics

The Computer is one of the most remarkable developments in the history of mankind. The quest for a teaching machine has led to the discovery of various modes of the Computer Assisted Instruction (CAI) as well as varied used of computer networking for educational purposes. The present article is an attempt to deal with this aspect of the usage of computers.

THE COMING OF COMPUTERS

Mankind has made tremendous advancements in every field, more so since the Industrial Revolution. The most outsanding and rapidly evolving development is undoubtedly the Computer. It is the outcome of man's search for a fast and accurate device that could be used to make detailed mathematical calculations. The use of fingers and toes by early man, pebbles by Egtyptians and the Abacus used by the Babylonians in about 2200 B. C. are all ancestors of the modern Computer. The other major stepping stones were, the use of principles of logarithms in 1614 A. D. by Napier, and the Logtable by Briggs in 1624. This was the time when different mechanical calculating devices were being designed like the adding maching by Blaise Pascal in 1647, multiplication and division machine by Liebnitz in 1673.

Charles Babbage (1822–48) (1822–48) of England and Lady Ada Lovelace designed the 'Difference Engine' and 'Analytical Engine' In 1890, Herman Hollerith designed the census machine and started the 'Tabulating Machine Company' which later merged with other companies to form International Business Machine Corporation (IBM).

In early 1943, at the Harvard University in the U. S. A. the first machine (Known as the Mark – 1 Computer[1] designed by Howard Aiken), which could automatically perform according to pre-programmed instructions without any manual interference, was demonstrated. It was complex in design and huge in size. The addition of two numbers (upto 23 digits) took 0.3 of a second and multiplication required 4.5 seconds. In February 1946, the first all electronic computer the ENIAC (Electronic Numerical Integrator and Calculator) was dedicated by a team led by Prof. Eckert and Prof. Mauchley of the University of Pennsylvania. It made use of very high speed vacuum tube switching devices. Although it was fastest available machine then, yet it was huge and generated tremendous heat.

The EDVAC (Electronic Discrete Variable Automatic Computer)

used acoustic delay lines was folowed by the EDSAC (Electronic Delay Storage Automatic Calculator) which was the first computer capable of storing data and instructions (Cambridge Universal, 1949). In 1950, UNIVAC–1 (Universal Automatic Computer) the first comercially available computer, was developed by Sperry Rand. All such machines that made use of vacuum tubes were the First Generation of Computers[2]. The Second Generation of Computers (1959 – 1964) made use of transistors, which were smaller 9the size of a tablet), yet performed the same task as a large valve, had high speed and increased capacity. However, the basic component was a discrete of separate individual entity so the thousands of separate components had to be hand assembled into functioning circuits.

In 1964, the invention of Integrated Circuit Chips marked the onset of the Third Generation of Computers (1964–1970). The functions of the numbers of transistor were put together on a single chip of silicon, as a result less space and power were required. Since then the computer industry has recorded a phenomenal growth world wide. At first in 'Small Scale Integration or SSI'. only about 10 components could be integrated. As the technique of IC's improved, it became possible to combine up to a 100 components known as 'Medium Scale Integration or MSI'

Today we have Fourth Generation Computers (1970–1977) with the entire CPU on a single chip, commonly known as the microprocessor, which make use of the 'Large Scale Integration or LSI' and the 'Very Large Scale Integration or VLSI' technology (tens of thousands of transistors on a single chip, barely 1 sq. cm. in size). This has made desktop and laptop computers a reality. Ever since, high speed VLSI's are being made use of for Artificial Intelligence (AI).

COMPUTERS IN EDUCATION :–

During the times when computer technology was in its infancy, the concepts of education and classroom instruction were also being revolutionized by more humane concepts and principles of Individualisation of Instruction. The child or the learner was in focus of all educational endeavours. Educational psychologists and behaviourists such as B. F. Skinner introduced the concepts of 'programmed instruction' or 'programmed learning'. Efforts were on for the quest of teaching machines which presupposed that the children could master specific academic or educational skills without the direct supervsion of the instructor. It was presumed that if the scope and sequence of skills was organized correctly, the students would be motivated by the positive reinforcement of continual success and would proceed through each level until they had achieved mastery. The personality interactions between teacher and

taught could be minmized if not totally eliminated and the process made more effective.

In the beginning very simple programmes were tried out on the machines such as those designed to teach basic pattern recognition skills. On one such machine a figure appeared on a window and the choices appeared in smaller ones which the child matched. In yet another teaching machine phonograph supplied additional auditory stimuli to the student who read the question on the window and wrote the answer on a strip of paper in a second slot. Thus most machines printed prestored questions, accepted choices of multiple choice questions and judged them for correctness.

However, the limitations of the early machine technology hindered the progress of this concept. These machines not only lacked in sound technology but were cumbersome, expensive and often out of order. Most of the machine based tutorial devices proved less than viable for larger scale development and the idea that they would solve a host of problems and allow each student to progress through an entire curriculum at his or her own pace without the teacher's indulgence turned out to be an elusive dream. As a consequence, attention turned towards the computer.

The first pioneering attempt in Computer assisted instruction some time in the early 1960's. When a product called PLATO (Program Logic for Automatic Operations) was developed in Minnesota as a method of teaching specific skills through drill and practice and positive reinforcement found to be particularly good for slow learners as they could proceed at a pace which suited them.

The second landmark was the development of tutorials in arithmetic in 1966 by Patrick Suppes of Stanford University. This was a Drill and Practice programme in elementary mathematics. PLATO III and PLATO IV were simulations that enabled the students to feel the experience as though they were real.

Nevertheless it was only after the advent of low cost microcomputers in 1970 that Computer assisted instruction or CAI finally acquired potential for mass dissemination of knowledge as PC's became more affordable. The inherent attributes of the computer such as :

– round the clock availability;

– capacity to store and process huge amounts of information ;

– cater to a great variety of educational needs;

and

– easily available feedback and assessment automatically made it the most preferred choice.

– CAI covered the whole educational spectrum and so efforts in the field of programmed learning gradually transformed into CAI.

COMPUTER NETWORKS AND COMMUNICATION :–

Besides data analysis and word processing there is a third area, communication, where computers may be used, that is by means of computer networking. A computer network is two or more computer/ terminals interconnected by one or more transmission paths with or without a mainframe system so that a common set of software or data files are shared by a group of users in addition to providing means for the users to communicate with each other.

The members of a computer network need not necessarily be limited to a given academia or geographical area or be at the same place at the same time. Network communication may take a variety of forms from a transfer of files between individuals and/or locations to the exchange of messages. On the basis of increasing communication potential the available methods of communication can be classified as follows :

File Transfer Protocol (FTP) : –

FTP involves only one user and a minimum of two computers. Using FTP, an individual connects his or her computer with another computer via a computer network and transfers the file which may be computer programs, research papers, journals in "electronic form" or any other information (even very large files). Being in the electronic form all programs, what are transferred via FTP, are ready for immeduiate use.

Bulletin Board Systems (BBS) :–

The bulletin board system has a menu driven system and availablity of message exchange (mail box) in addition to simple file transfer. A single "host" computer acts as collection point for the transfer of information. It stores the information and operates under the appropriate BBS software. For information retrieval, an individual must connect to the host computer which should be fast and should have a large amount of disk storage available.

Interactive Communication :–

Networks do not necessarily have to use a mainframe computer system, however adding a mainframe computer system may expand a mainframe. Computer system may expand the region available for communication. The mainframe computer not only allows the network to run more efficiently by being much faster and providing bigger disk space, but also allows individuals to interact through e–mail, interactive messages and joint conferences.

Electronic Mail (E–MAIL) :–

The use of electronic mail is one of the most common usages of computer interaction. Its main advantage is that it is active and the user is usually informed (upon logging onto the computer) that there is mail waiting. In addition to individuals exchanging messages, it is usually possible to send a message to a group of persons. This may lead to a seminar-type information exchange. This concept can be then expanded to a "Continuous Seminar" or "permanent discussion" when there are no fixed times of meetings by establishing a computer based discussion group or list.

Listserv :–

A list server (or listserv) is a software package that facilitates the communication between members of a discussion group (sending of a single message to a group). Any mail sent to the discussion address is automatically distributed by the listserv to all members of the group. For every listery there is at least one individual indentified as the "owner" of the list. responsible for the administration and upkeep of the list. It manages the group's archive and allows an individual (member and nonmembers) to examine earlier discussions and may also provide users with the possibility of file storage and recovery. One can send a file to the list and make it available to those interested in it without having to send it to everybody.

Electronic Journals :–

As the degree of control and intervention increases, moderated lists begin to take the form of an electronic journal. The electronic journal, like its paper counter part, may like to take two forms. An electronic newsletter, used to announce research opportunities published on a regular basis and the fully reviewed journal. (The Journal of Distance Education is one such electronic journal)

Any of these available methods of communication via computer networks can be utilized for educational purposes.

NETWORKING AND ITS APPLICATION TO EDUCATION :–

Currently it is possible to use computer networks to develop courses, teach courses, have seminars, and have teachers and students interact with each other. Such interactions are possible among students and/or teachers in different states or countries. Depending on the extent or area they cater to networks can be of two types. A local area network (or LAN) is one in which computers in different rooms of a single building or different buildings on a separate campus (usually 3–50 nodes) are connected together. A wide area network or WAN provides connections to distant networks (global) and resources via

telephone lines and satellites.

Faculty Interactions :-

Computer networks can be used to facilitate communication between faculty members in different localities. In North Carolina, the MicroNet allows teachers to take graduate level courses in earth science[3]. Using the network enables the teachers to take classes without their actual presence in the classroom and provides support for classroom instruction.

In future, it would be possible for individuals to use computer networks to communicate with textbook authors and publishers about the nature of textbooks for certain courses and to design unique or personalized texts and other materials for courses. There is also an observable trend to use discussion lists to locate current research topics, research results, research papers and technical reports in selected areas (there is an interaction with those currently doing research in given area rather than an examination of previously done research). It seems that with the rapid growth in published results, such a form of communication between researcher will grow and increase research productivity by eliminating duplicate efforts.

Student Interactions :-

Computer networks can be used to allow students to communicate and interact with other students outside their immediate geographic area. Krieg described LAN use at the junior high level to help meet the school district's computer literacy requirement[4]. Two projects, KINET and KIDS–91 have been developed to connect students in classrooms around the world. A course entitled "The Physics of Space and Time" was taught utilizing extended computer networks. This course was offered through the University of West Florida in 1990[5]. It involved 51 students at 9 different universities and high schools. The test for the course was previously agreed upon and the listserv was used to synchronize the lecture phase of the course and to assign homework. The computer network allowed the students to discuss issues related to the course and ask the course instructors questions.

Faculty at the New Jersey Institute of Technology developed a course structured to utilize a computer mediated communication system keeping two objectives in mind. Firstly, to increase the number of ways students could encounter educational experiences outside the traditional classroom and secondly, to use collaborative learning processes to improve the quality and effectiveness of education. While it is not clear if an electronic classroom is better or worse than the traditional classroom, it does seem that the availability of computer based learning

networks leads to increased participation between certain groups of students[6]. It was noted that one month after the course was completed there was still interaction among members of the course. It is easy to visualize the role of the listserv-type environment in establishing cross-cultural awareness of students (many listservs have international subscribers) Thus, teams of students from different countries could discuss problems of ecology, culture, society, politics, and other topics of interest they might come up with.

MODES OF INTERNET BASED LEARNING (IBL) :-

The "heart" of the teaching system is the remote teacher or mentor who negotiates with and guides and learner, its "brain" is a multimedia relational database and its veins and arteries are wide band telecommunications network[7]. Three modes of IBL have been suggested[8] :

Mode 1– Entire course material available on the web site and students can go to any part.

Mode 2– Materials for a weeks' study are provided. Students do self-check exercises and interact with peer group as well as instructor through e-mail. The co-ordinator can again put up a summary session at the end of each week. The availability of material is restricted to the current two weeks to encourage students to follow the recommended schedule.

Mode 3– The learning material can be presented in smaller, intensive, interactive sessions of 20–30 mimutes each. These sessions would have some content available, self-check exercises and links to other parts of the course etc.

The types of applications that IBL can be made use of are [8] :

1. Tele-counselling
2. On demand examinations
3. On-line examination/evaluations

4. Beverly M. Krieg, T. H. E. Journal, May, 1987, 64–67

5. Tony Mitchell, and Marcin Paprzycki : Proceedings of the 2nd Annual South Central Small College Computing Conference, PP 1–8, 1991

6. Starr Roxanne Hiltz : T. H. E. Journal, June, 1990

7. T. Hello Battes : School of Computer and Information Sciences : Information Brochure and Application Form IGNOU 2 Jan 1999

8. M. M. Pant : Perspective in Education 15 Special Issues, pp 33–43, 1999

वर्तमान परिवेश में लड़के/लड़कियों की मिश्रित बटालियन की आवश्यकता

ले0 (डॉ0) गौतमवीर
प्रवक्ता, राजनीति विज्ञान विभाग

वर्तमान समय में देश के युवाओं में चरित्र निर्माण, समर्पण एवं सेवा भाव उत्पन्न करने के उद्देश्य से राष्ट्रीय स्तर पर अनेक संगठन कार्य कर रहे हैं। जैसे - राष्ट्रीय सेवा योजना (N.S.S.) स्काउट एवं गाइड जो बालक एवं बालिकाओं, दोनों को ही सम्मिलित कर माध्यमिक विद्यालयों, महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालय स्तर पर चलाये जा रहे हैं। लेकिन हकीकत में इन संगठनों की व्यावहारिक उपयोगिता सीमित नहीं है। राष्ट्रीय कैडेट कोर (N.C.C.) देश की एकमात्र ऐसी संस्था है जो युवाओं में कार्य निहित ऊर्जा का उपयोग तथा सामुदायिक विकास करते हुए देशवासियों को राष्ट्रीय एकता की भावना से ओतप्रोत कर 'एक राष्ट्र' के सूत्र में पिरोती है। यह एक ऐसा बहुआयामी संगठन है जिसका प्राथमिक उद्देश्य देश के युवाओं एवं युवतियों को शारीरिक एवं शस्त्र प्रशिक्षण देने के साथ ही साथ उनमें उच्चतम चारित्रिक मूल्यों का विकास, साहस, सहचर्य, नेतृत्व, धर्मनिरपेक्षता, रोमांच, निःस्वार्थ सेवाभाव को संचारित करते हुए संगठित, प्रशिक्षित व प्रेरित युवाओं का एक ऐसा मानव संसाधन तैयार करना है, जो देश की सेवा के लिए सदैव तत्पर रहते हुए सशस्त्र सेना में आपनी आजीविका (कैरियर) की तलाश करने में सक्षम हो सके।

उपरोक्त उद्देश्यों की पृष्ठभूमि में ही सन् 1948 में राष्ट्रीय कैडेट कोर की स्थापना हुई। शीघ्र ही छात्राओं के भी सर्वांगीण विकास को ध्यान में रखते हुए एवं इस संगठन को और अधिक बल प्रदान करने के उद्देश्य से 1949 में महिला इकाइयों का गठन किया गया। तब से लेकर अभी तक युवक-युवतियों का प्रशिक्षण अलग-अलग गठित बटालियनों के स्तर से दिया जाता रहा है। पिछले 50 वर्षों में जिस प्रकार से सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और संचार क्षेत्रों में जितनी तेजी से परिवर्तन हुआ है उसके परिणामस्वरूप पुरूष एवं महिलाओं के कार्यस्थल एवं क्रियाकलापों के बीच सहभागिता में उत्तरोत्तर बढ़ोत्तरी हुई है। औद्योगिक संगठनों के क्षेत्र में किये गए बहुत से आधुनिक अध्ययन इस बात को प्रभावित करते हैं कि पुरूष एवं महिलाओं के साथ-साथ कार्य करने से दोनों की कार्यकुशलता, कार्यक्षमता, गुणवत्ता और उत्पादकता में बढ़ोत्तरी ही होती है, सबसे बड़ी बात एक बेहतर आपसी समझ बढ़ने के कारण बेहतर कार्य वातावरण और बेहतर कार्य संस्कृति का विकास होता है। अतः इस बदलते परिवेश के परिप्रेक्ष्य में और समय के साथ सामंजस्य बनाए रखने के उद्देश्य से यह महसूस किया जाने लगा है कि क्यों न अन्य क्षेत्रों की तरह छात्र-छात्राओं की मिश्रित बटालियन का गठन किया जाए और प्रशिक्षण का समान अवसर प्रदान करते हुए उनका सर्वांगीण विकास किया जाये।

निःसंदेह मिश्रित इकाईयों का गठन एक नई सोच है। अतः भविष्य में गठनोंपरान्त ही

इसके लाभ या हानि का सही आंकलन किया जा सकेगा। फिर भी, इसके कुछ निश्चित लाभ है, जिन्हें इंगित किया जा सकता है :-

(1) कम से कम खर्चे में लड़कियों की अधिक से अधिक भागीदारी सुनिश्चित करना।

(2) अधिक से अधिक लड़कियों को इस संगठन से जोड़कर घर की चारदीवारी से दूर लड़कियों के सोच के स्तर को और विस्तृत करना।

(3) मिश्रित इकाईयों के होने की स्थिति में जो कठिनाई गर्ल्स बटालियनों को क्षेत्र की दूरी बढ़ाने से होती थी और प्रशिक्षण में कठिनाई आती थी उनका दूर होना और प्रशिक्षण में कठिनाई आती थी उनका दूर होना और प्रशिक्षण का सुगम हो जाना।

बदलते परिवेश को देखते हुए लड़कियों को एन0 सी0. सी0 प्रशिक्षण के माध्यम से सशस्त्र सेनाओं में आजीविका (कैरियर) तलाशने हेतु प्रेरित करना।

समान प्रगति और विकास की प्राप्ति की आशा, असमान अवसर के द्वारा नहीं किया जा सकता है। यदि हम उत्तर प्रदेश डायरेक्टर के स्तर पर राष्ट्रीय कैडेट कोर के सन्दर्भ में छात्र एवं छात्राओं के कैडेट्स के रूप में उपलब्ध संख्या पर विहंगम दृष्टि डालें तो स्थिति अधिक स्पष्ट हो जायेगी। इन छात्र कैडेटों की कुल संख्या 1,15920 (86.94 प्रतिशत) है। वहीं छात्राओं की 78 बटालियन कार्यरत हैं वहीं छात्राओं की 17 बटालियन हैं। यह आज के बदलते परिवेश में लड़कियों की शिक्षा और विभिन्न क्रिया कलापों में उनकी सहभागिता के प्रति सामाजिक दृष्टिकोण में सर्थक परिवर्तन हुए हैं और विद्यालयों में छात्राओं की संख्यार में अत्यधिक बढ़ोत्तरी हुई है। साथ ही एन0सी0सी0 जैसे अनुशासित वर्दीधारी युवा संगठन में प्रवेश लेने के इच्छुक छात्राओं की संख्या में कई गुनी बढ़ी है। चूंकि कालिजों में सह-शिक्षा व्यवस्था सुचारू रूप से संचालित है और इस स्तर तक छात्र-छात्राऐं मानसिक रूप से भी परिपक्व हो चुके होते हैं। ऐसा करना छात्र-छात्राओं के बीच एक स्वस्थ एवं उपयोगी प्रतियोगिता की भावना उत्पन्न करने में भी सहायक है। यही नहीं एक दूसरे की उपस्थिति से इनमें सकारात्मक सोच का भी विकास होता है। अतः ऐसी स्थिति में मिश्रित इकाईयों का गठन श्रेयस्कर है।

सभी विकसित देशों की सशस्त्र सेनाओं में महिलाएं उच्च पदों पर आसीन हैं और पुरूष सहयोगियों के साथ सफलतापूर्वक कार्य संचालित कर रही हैं जिसका ज्वलंत उदाहरण अमेरिकन फौजे हैं। भारतीय सशस्त्र सेना में भी महिलाओं की भर्ती हो रही है। किन्तु इनकी संख्या अत्यधिक सीमित है। अतः एन0 सी0 सी0 की ट्रेनिंग ही एक मात्र ऐसा रास्ता है जिसमें प्रशिक्षण प्राप्त कर लड़कियां सेना में अपने कैरियर की सम्भावना की तलाश कर सकती हैं। चूंकि एन0सी0सी0 प्रशिक्षण का उद्देश्य युवकों में नेतृत्व, धर्मनिरपेक्षता, साहस, साहचर्य, निःस्वार्थ सेवाभाव एवं उच्चतम चारित्रिक मूल्यों का विकास करना है। अतः प्रश्न उठता है कि क्या इन मूल्यों की आवश्यकता युवतियों के लिए नहीं है? क्या युवतियों में नेतृत्व, साहस और साहचर्य जैसे मूल्यों का विकास नहीं होना चाहिए? जाहिर सी बात है कि जब तक युवतियां इस संगठन के प्रशिक्षण से दूर रहेंगी तब तक एन0सी0सी0

संगठन अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकेगा। अतः यह बहुत अजीबोगरीब लगता है कि जहाँ देश में महिलाओं में साक्षरता का प्रतिशत निरन्तर बढ़ा है वहीं इनकी संख्या में बढोत्तरी क्यों नहीं की जा रही है? चूंकि आर्थिक कठिनाईयों की वजह से सरकार एन0 सी0 सी0 की नई इकाईयां खोलने में सक्षम नहीं है और सैकड़ों की संख्या में सह-शिक्षा प्रदान करने वाले कॉलिज, गर्ल्स यूनिट खोलने की मांग, ग्रुप आफिस से लगातार करते रहे हैं। अतः उन विद्यालयों में जहाँ लड़कों की एन0 सी0 सी0 पहले से चली आ रही है।, वहाँ गर्ल्स यूनिट को लड़कों की यूनिट के साथ मिश्रित करके चलाया जा सकता है जिसमें अधिक से अधिक छात्राओं की इस संगठन में भागीदारी सुनिश्चित की जा सके। वास्तव में लड़कियों के सर्वांगीण विकास की दृष्टि से यह अभिनव प्रयोग न केवल उनके लिए ही बल्कि उनके परिवार, समुदाय और राष्ट्र तीनों के परिप्रेक्ष्य में अत्यन्त लाभकारी होगा। अतः हमें तात्कालिक चुनौतियों को स्वीकारते हुए इस दिशा में सार्थक कदम उठाने की आवश्यकता है।

"हमें अपने पारिश्रम, ज्ञान और सतत् प्रयास के द्वारा भारत को विकसित देश बनाना है।"

ध्येय :- एकता और अनुशासन

MOTTO :- Unity And Discipline

एन0 सी0 सी0 के उद्देश्य -

देश के युवाओं में चरित्र, साहचर्य, अनुशासन, नेतृत्व, धर्मनिरपेक्षता, रोमांच तथा निःस्वार्थ सेवा भाव का संचार करना।

संगठित, प्रशिक्षित व प्रेरित युवाओं का एक मानव-संसाधन तैयार करना, जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नेतृत्व प्रदान करना व देश की सेवा के लिए सदैव तत्पर रहना।

सशस्त्र सेना में जीविका (कैरियर) बनाने के लिए युवाओं को प्रेरित करने हेतु उचित वातावरण प्रदान करना।

Aims of N.C.C. -

To develop character, Comradeship, discipline, leadership, secular outlook, spirit of adventure and the ideals of selfless service amongst the youth of the country.

To create a human resource of organized, trained and motivated youth, to provide leadership in all walks of life and always available for the service of the nation.

To provide a suitable environment to motivate the youth to take up a career in the Armed Forces.

कहानी में शैली-शिल्प

-डॉ0 अर्चना सिंह
वरिष्ठ प्रवक्ता, हिन्दी विभाग

कहानी ने आधुनिक युग की सर्वाधिक लोकप्रिय साहित्यिक विद्या का गौरव प्राप्त किया है। अपनी अत्यधिक कार्य-व्यस्तता के मध्य प्रबुद्ध पाठक वर्ग इसके द्वारा अपेक्षाकृत अल्पावधि में मानव चरित्र को उसके विविध कार्य-व्यापारों में देखकर आनन्दित होता है। गद्य-साहित्य की विभिन्न विधाओं में, अपने कलात्मक रूप तथा आकर्षक अभिव्यक्ति के कारण, कहानी को विशेष महत्व प्राप्त है। संक्षिप्त आकार के भीतर अत्यधिक मर्म-स्पर्शिता को समेटे हुए कहानी ने वर्तमान युग में अन्य विद्याओं की तुलना में सर्वाधिक प्रसार द्वारा अपनी लोकप्रियता का प्रमाण प्रस्तुत किया है। अतः कहानी की सफलता के लिए उसमें शैली-शिल्प का सशक्त होना परमावश्यक है। कहानीगत शैली-शिल्प पर विचार करना अत्यन्त समीचीन होगा।

कहानी और शैली :- "कहानी की शैली के लिए प्राथमिक आवश्यकता उस संवेदना की है, जिससे वर्ण्य के साथ पाठक को एक तान ले चला जा सके।"[1] कहानी के कला-पक्ष के अन्तर्गत शैली सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व के रूप में स्वीकृत है। क्योंकि "शैली की उर्वर धारा में कहानी कला के कमनीय कुसुम खिलते हैं। शैली के शीशे में ही कलाकार के भाव अपना स्वरूप देखते हैं।"[2] कहानी में शैलीकरण ही संग्रह और प्रबन्ध के द्वारा सामान्य बातचीत तक को संवाद की महत्वपूर्ण कला में परिवर्तित कर देता है। यह एक सच्ची साहित्यिक कलात्मकता है। "शैली कहानी कला की वह रीति है, जो इसके अन्य तत्वों का अपने विधान में उपयोग करती है।"[3]

शैली का सम्बन्ध वस्तुतः कहानी के किसी एक तत्व से न होकर सब तत्वों से रहता है। शैली का प्रभाव कहानी के सभी अंगों पर पड़ता है। "कला की प्रेषणीयता या दूसरों को प्रभावित करने की शक्ति शैली पर ही निर्भर करती है।"[4]

"शैली की दृष्टि से कहानी निरन्तर विश्व स्तर पर स्थूल से सूक्ष्म की आग्रही होती जा रही है।"[5] शैली दृष्टि से कहानी पर विचार करते हुए प्रायः उसकी ऐतिहासिक शैली, आत्म-कथानक शैली, वर्णनात्मक शैली, पत्रात्मक शैली, नाटकीय शैली और डायरी शैली का उल्लेख किया जाता है।"[6] कहानीकार को शैली-निर्माण के लिए एक-एक शब्द पर ध्यान देना पड़ता है। कहानी की भाषा-शैली में कथा के अनुरूप प्रवाह होना चाहिए। अच्छी शैली वही है, जिसमें शब्दों को उचित स्थान पर पिरोकर भावाभिव्यक्ति में बिना किसी व्यवधान के साहित्यिक रूप प्रदान किया जाये तथा न तो अनावश्यक अंशों का समावेश हो और न ही आवश्यक अंशों का परित्याग।

कहानी और शिल्प :- सामान्यतया शिल्प-विधि का अर्थ रचना-प्रक्रिया से

लगाया जाता है। किसी वस्तु के निर्माण में जो उपकरण प्रयुक्त किये जाते हैं, वे ही उस वस्तु की शिल्प-विधि कहे जाते हैं। शिल्प-विधि के अन्तर्गत वस्तु की बाह्य और आन्तरिक दोनों प्रणालियों का समावेश होता है, किन्तु प्रधानता वस्तु की बाह्य रचना-प्रणालियों को ही दी जाती है। साहित्य के शिल्पगत अध्ययन से सामान्यतया, जो अर्थ ग्रहण किया जाता है, साहित्य की सम्पूर्ण विधाओं के भीतर अभिव्यजंना का ढंग-विशेष तथा वह अनुक्रम हैं, जो रचना के प्रारम्भ से अन्त तक कुछ विशिष्ट तत्वों द्वारा शिल्प मूर्त्त किया गया है। कहानी के रूप तथा वस्तु दोनों तत्वों के निहित होने के कारण शिल्प-शब्द को अधिक व्यापक अर्थों में ग्रहण किया जाता है।

कहानी के निर्माण में जिन उपादानों द्वारा कहानी का ढांचा तैयार किया जाता है वे सब कहानी के शिल्प-तत्व कहलाते हैं, हिन्दी में शिल्प के समान-अर्थों में अनेक शब्द प्रचलित हैं यथा - शिल्प-विधान, शिल्प-कला, शिल्प-शैली, शिल्प-विधि, शिल्प-अभिव्यजंना। शिल्प-विधि रचना को एक रूप प्रदान करती है। किसी वस्तु के रूप में परिवर्तन होना शिल्प-विधि पर ही निर्भर करता है। शिल्प विधि का निर्माण रचनाकार की इच्छा व उद्देश्य पर निर्भर करता है। कहानीकार अपने भावों एवं कलाओं को रूप प्रदान करने के लिए युक्ति बनाता है, उस युक्ति के द्वारा ही वस्तु में समय-समय पर परिवर्तन करता है। वस्तु का निर्माण एवं उसमें परिवर्तन की क्रिया शिल्प-विधि की सीमा में आती है।

'शिल्प' शब्द की व्युत्पत्ति और अर्थ :- "शिल्प शब्द की व्युत्पत्ति संदिग्ध है"[1] आप्टे के अनुसार इस शब्द की व्युत्पत्ति शिल् + पक् से है।[8] उणादि कोश के अनुसार "शिल्प" शब्द शील समाधौ धातु से 'प' प्रत्यय और शील को ह्रस्व लगाकर बनता है।"[9]

"हलायुध कोश" में शिल्प का अर्थ 'क्रिया-कौशलम्' किया गया है।"[10] "अमरकोश में शिल्प को 'कर्मकला दिकम्' कहा गया है।"[11] शब्द-कल्पद्रुम्' में शिल्प शब्द 'कलादिक कर्म्म' के रूप में स्पष्ट किया गया है।"[12] सर मोनियर विलियम्स ने इस शब्द के अनेक अर्थ प्रयुक्त किये हैं।[13] (1) कलात्मक कार्य (2) कोई भी हस्त कला, यान्त्रिक या ललित कलायें (64 कलायें) (3) काव्य, संगीत, अभिनय इत्यादि (4) किसी भी कला, शिल्प तथा कला-कार्य में कौशल (5) रूप आकृति। आप्टे ने इन अर्थों के साथ ही कला, किसी भी कला में कौशल, कार्य, सृजन आदि को भी शिल्प के अर्थों के अन्तर्गत स्वीकार किया है।[14]

संस्कृत वाड्मय में शिल्प शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में मिलता है। 'ऐतरेयब्राह्मण' में विधाता की रचना को 'देश-शिल्प' और मनुष्य की सृष्टि के लिए 'ऐषेताम् वैशिल्पानाम् अनुकृति' कहा गया है।"[15] वात्स्यायन ने शिल्प के अन्तर्गत चौंसठ कलाओं का उल्लेख किया है।"[16] मनुस्मृति में इस शब्द का प्रयोग कला-कौशल के अर्थ में हुआ है।[17] कौषीतार्क में नृत्य और गीत के साथ शिल्प का उल्लेख मिलता है।[18] भरतमुनि ने - नाट्यशास्त्र में कलाओं तथा शिल्प को काव्य का अंगांगी भाव कहा है।[19] इन उल्लेखों से यह स्पष्ट हो जाता

है किस शिल्प शब्द का प्रयोग प्रधानतः दो अर्थों में मिलता है - एक तो कौशलपूर्ण रचना के अर्थ में, दूसरे नृत्य, मृदंग, वादन, मूर्ति, निर्माणादि विभिन्न कलाओं के अर्थ में। इन दोनों अर्थों में संस्कृत कोशाकारों एवं साहित्यकारों ने मुख्यतः प्रथम अर्थ को ही सबसे अधिक स्वीकार किया है। अधिकांश विद्वानों ने शिल्प शब्द को रचना-क्रिया कौशल एवं कला-कौशल के अर्थ में ही स्वीकार किया है। अतः निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं - शिल्प शब्द का मुख्य अर्थ रचना (क्रिया) तथा रचना (क्रिया) में कुशलता से है।

आधुनिक हिन्दी आलोचक या साहित्यकार :- शिल्प,[20] शिल्प विधि,[21] शिल्प-विधान[22] आदि शब्दों का प्रयोग अंग्रेजी भाषा के आर्ट, एक्सप्रेशन, क्राफ्ट, टैकनीक आदि किसी न किसी शब्द के पर्याय के रूप में करते हैं। इन तीनों को ही टेकनीक शब्द का पर्याय माना गया है। पर्सीलिबक ने कला और शिल्प शब्द में अन्तर न करके भी दोनों के ध्वनित अन्तर का उल्लेख किया है। कला शब्द चंचल और उड़ने वाला है, जिसे न पकड़ा जा सकता है और न बाँधा ही जा सकता है। शिल्प में ये बातें नहीं हैं और यह शब्द तुरन्त निर्मित वस्तु एवं निर्माण के तरीके पर पहुंच जाता है।"[23] शब्द कोशों के अनुसार टेकनीक शब्द का अर्थ है - शिल्प-विधि, रचना-प्रणाली,[24] प्रविधि[25], तन्त्र[26] आदि अर्थात् टेकनीक का अर्थ हुआ शिल्प-प्रविधि, शिल्प तन्त्र, शिल्प के नियम या सिद्धान्त। शिल्प के लिए आंग्ल भाषा में टेकनीक (Technic or Technique) शब्द प्रचलित है, प्रथम का प्रयोग एक विशिष्ट कला, उपकारी कला, दक्षता तथा कला के लिए होता है तथा दूसरे शब्द का प्रयोग यन्त्र-कला, अभिव्यक्ति या सृजन के ढंग के लिए विशेष रूप से होता है।[27]

वान और कॉनर ने शिल्प विधि को वह साधन माना है जो लेखक को अपने अनुभव का, जो वास्तव में विषय वस्तु होती है, प्रयुक्त करने को प्रेरित करता है, क्योंकि शिल्प-विधि ही वह रास्ता है, जिसके माध्यम से वह अपने विषय को खोज सकता है, जांच सकता है और उसका विस्तार कर सकता है, इसी के माध्यम से वह उसमें अन्तर्हित भाव को अभिव्यक्त कर सकता है और उसका मूल्यांकन कर सकता है।"[28] शिल्प या तकनीक शब्द के साथ अभियोजन, दस्तकारी और पटुता का अर्थ बोध होता है न कि कलात्मकता का। स्पष्टतया साहित्यिक आलोचना में तकनीक शब्द का प्रयोग ऐसे अर्थ में होता है, जिसमें वह अन्यत्र नहीं प्रयुक्त होता।"[29]

हिन्दी साहित्य में 'शिल्प' का अर्थ :- शिल्प प्रविधि का शब्दिक अर्थ है, किसी वस्तु के निर्माण का ढंग या क्रिया अथवा तत्वों का समुचित समायोजन जिनके समानुपातिक उपयोग से किसी नवीन रचना को जन्म मिलता है। कला या साहित्य के सन्दर्भ में शिल्प-प्रविधि का तात्पर्य है - किसी साहित्यिक कृति की रचना अथवा निर्माण की प्रक्रिया। साहित्यिक कृति अथवा रचना की सृष्टि में जिन विधियों, ढंगों, तरीकों और रीतियों का प्रयोग किया जाता है, वे ही प्रविधि की संज्ञा से अभिव्यक्ति में जो ढंग या

विधि अपनाता है वही प्रविधि के नाम से जानी जाती है।

"शिल्प-विधि का शाब्दिक अर्थ है किसी चीज को बनाने या रचने का ढंग या तरीका। किसी वस्तु के रचने की जो विधियां या प्रक्रियायें होती हैं, उनके समुच्चय को शिल्प-विधि नाम से पुकारा जाता है, सरल भाषा में यदि कहा जाये तो शिल्प-विधि से अभिप्राय हाथ से कोई वस्तु तैयार करने तथा दस्तकारी से है।"[30]

"शिल्प तत्व :- किसी वस्तु के निर्माण में त्याग - चयन की संरचना का नाम है। प्राचीनों ने शिल् का मूल 'शिल् - उच्छे' धातु से दर्शाते हुए बताया है कि यथानुकूलसंरचना में उपयोगी वस्तु का चयन कर लेना और अनुपयोगी को त्याग देना ही शिल्प का वैशिल्ट्य है। कथा-साहित्य के निर्माण में संरचना सम्बन्धी यह त्याग चयन सामान्यतः कथा-वस्तु, पात्र, संवाद, देशकाल, शैली और उद्देश्य इन तत्वों को लेकर की जाती है। अपने सही अर्थों में कथा-साहित्य या उपन्यास शिल्प वस्तुतः दो रूपों में अभिव्यक्त होता है - एक तो कथानक के संयोजन या संघटन में घटक कथा - स्रोतों के चयन के रूप में और दूसरे उस कथानक का आख्यान के ढंग या शैली के रूप में, एक को हम कथानक-शिल्प और दूसरे को उपस्थापन-शैली का नाम देते हैं।"[31]

डॉ0 मंगल मेहता के अनुसार - "सविस्तार वर्णन, कई उपमायें, संगीत द्वारा उनकी आवृति, वाक्चातुर्य, सरस-संवाद, घटना की विस्मयकारी स्थिति, चरम स्थिति, एक निष्कर्ष, उपदेश यह सब शिल्प है, इसके साथ ही कुतूहल तत्व को बराबर बनाये रखने का प्रयत्न होता है।"[32] जैनेन्द्र कुमार के अनुसार "टेकनीक उस ढांचे के नियमों का नाम है, पर ढांचे की जानकारी की उपयोगिता इसी में है कि वह सजीव मनुष्य के जीवन में काम आये, वैसे ही टेकनीक साहित्य-सृजन में योग देने के लिए है।"[33]

कहानीकार अपने मनोवांछित अभिप्राय को अभिव्यक्ति के लिए उसके अनुरूप एक कथानक तैयार करता है। कथानक में सजीव पात्रों को जोड़ता है, दोनों के सहारे एक परिपार्श्व का वातावरण प्रस्तुत करता है और उसमें शैली की क्रियाशीलता से पाठक को एक अत्यन्त सहज गति से अभिप्राय के चरमोत्कर्ष पर ला खड़ा कर देता है और स्वयं दूर हट जाता है।"[34] यह प्रक्रिया कहानी की कला है, उसका शिल्प है और कथा वस्तु मात्र, चरित्र-चित्रण, संवाद-वातावरण, शैली और उद्देश्य उसके मूल उपकरण हैं। श्रीमती ओम शुक्ल ने रचना-प्रक्रियाओं के समूह को शिल्प-विधि मानते हुए लिखा है "किसी वस्तु के रचने की जो-जो विधियां अथवा प्रक्रियायें होती हैं, उनके समुच्चय को शिल्प के नाम से पुकारा जाता है।"[35]

(कहानी) अपने में सर्वांश या आंशिक वस्तु - सत्य या भाव-सत्य का साक्षात्कार है।"[36]

रचना-विधान को शिल्प-विधि के लिए आवश्यक मानते हुए डॉ0 लक्ष्मी नारायण

लाल का मत है, "किसी भाव को एक निश्चित रूप देने के लिए जो विधान प्रस्तुत किये जाते हैं, वहीं उस कला की शिल्प-विधि है।"[37] यशपाल ने शिल्प विधि को समझने के लिए वस्तु की चीड़-फाड़ को आवश्यक माना है।

"किसी भी वस्तु की शिल्प-विधि को समझने के लिए सीधा उपाय यह हो सकता है कि उसकी निर्माण-प्रक्रिया का परिचय पाया जाये। सम्भव हो सके तो उस वस्तु का अंग-विच्छेद करके अथवा उसे उधेड़कर उसके निर्माण-प्रक्रिया को समझ लिया जावे।"[38] डॉ0 आदर्श सक्सेना ने शिल्प-विधि की व्याख्या करते हुए लिखा है "..... अतः शिल्प शब्द को उसके अर्थगत रूप में प्रयुक्त करने का हमारा प्रयोजन कला की उस विशिष्ट प्रणाली से होता है जिससे एक कलाविद् उसी पत्थर का प्रयोग कर एक सुरम्य मन्दिर का निर्माण कर देता है और दूसरा एक स्मारक का। विशिष्ट प्रणाली का, कार्य-संचालन का एक विशिष्ट ढंग का तरीका होता है जो अपने सीमित अर्थ में शैली नाम से अभिहित किया जाता है।"[39]

अधिकांश विद्वानों ने शिल्प-विधि का अर्थ रचना-प्रक्रिया से लिया है। कहानी की शिल्प-विधि के लिए कथानक, पात्र, वातावरण एवं अभिव्यक्ति कौशल होना अनिवार्य होता है। इन्हीं के सहयोग से कहानी के विविध रूपों का निर्माण कहानीकार करता है। शिल्प का अर्थ आलोचकों ने रूप या रूपाकार (फार्म) से लिया है। डॉ0 सत्यपाल चुघ ने शिल्प विधि का सम्बन्ध रचना की प्रक्रिया से माना है।[10] जो शिल्प के अर्थ को सर्वाधिक उचित अभिव्यक्ति देता है, वास्तव में भावों के अन्तिम रूप पाने तक के जो भी प्रयास हैं वे सब शिल्प कहे जायेंगे। डॉ0 कैलाश वाजपेयी के विचार से - "शिल्प-विधि रचना की उन प्रमुखताओं का लेखा-जोखा है, जिनके आधार पर रचना मूर्त्त हो सकी है, अथवा विशिष्ट भंगिमा के साथ लेखनी द्वारा अवतरित हुई है। शिल्प-विधि रचना कैसी है, यह उत्तर न देकर रचना ऐसी है, पर अधिक जोर देती है।[11]

इस प्रकार शिल्प ही वह माध्यम है, जिससे कहानीकार अपने विषय का अनुसन्धान और विकास करता है, अर्थ बोध कराता है और अन्ततोगत्वा उसका मूल्यांकन करता है। शिल्प या रचना-कौशल के माध्यम से ही वह अपने अनुभव, जो कि कहानी का वर्ण्य-विषय है और जिसे वह अभिव्यक्ति प्रदान करने के लिए विवश है, प्रस्तुत कर पाता है। अतः कहानी शिल्प से अभिप्राय कला के उन सिद्धान्तों से है, जिनके आधार पर किसी कहानी की रचना होती है। डॉ0 मोहन अवस्थी का मत है "विधान और व्यक्तित्व की प्रक्रिया ही शिल्प है, कला आदि आकाश की भाँति असीम हैं, तो शिल्प घटाकाश की भांति ससीम। कला जब व्यष्टिगत होती है, तब उसे शिल्प कहने लगते हैं।"[42] संक्षेप में, शिल्प से तात्पर्य हुआ कहानी के प्रस्तुत करने की प्रणाली या ढंग, अतएव शिल्प-विधि के अन्तर्गत वे समस्त तत्व आ जाते हैं, जो कहानी का निर्माण करते हैं।

सन्दर्भ :

1. डविड डे चेज : ए स्टडी आफ लिट्रेचर, पृष्ठ 52

2. गंगा प्रसाद पाण्डेय : निबन्धिनी, पृष्ठ 35

3. डॉ0 लक्ष्मी नारायण लाल : हिन्दी साहित्य कोश (सं0 धीरेन्द्र वर्मा) खंड 1, पृष्ठ 22

4. बाबू गुलाब राय : सिद्धान्त और अध्ययन - काव्य के रूप, पृष्ठ 217

5. डॉ0 नगेन्द्र : मानविकी पारिभाषिक कोष (साहित्य खंड) पृष्ठ 235

6. सं0 धीरेन्द्र वर्मा : हिन्दी साहित्य कोश, पृष्ठ 221-222

7. सर मोनियर विलियम्स : ए संस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी, पृष्ठ 1073

8. वी0 एस0 आप्टे : संस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी, भाग - 3 पृष्ठ 1554

9. उणादि कोश, 13/28

10. हलायुधकोश, पृष्ठ 593

11. अमरकोश (सं0) पं0 शक्तिधर शास्त्री, पृष्ठ 349

12. शब्द कल्पद्रुम : पंचम काण्ड, पृष्ठ 77

13. सर मोनियर विलियम्स : ए संस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी, पृष्ठ 1073

14. सर मोनियर विलियम्स : ए संस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी, भाग 3, पृष्ठ 1554

15. ऐतरेय ब्राहमण 6/5/26

16. कथा सरित्सागर 25/175 (आप्टे विलियम्स के अनुसार भी 64 कलायें शिल्प कही जाती हैं।)

17. मनुस्मृति : 9/259

18. त्रिवृद्ध शिल्पं नृत्यं गतिं वाति भित्ति - कौषीतकि 29/51 वैदिककोश, पृष्ठ 54

19. न तज्ज्ञांन न तिच्छत्यं न साविधा न सा कला - नाट्यशास्त्र, 1/113

20. डॉ0 कैलाश वाजपेयी : आधुनिक कविता में शिल्प (शोध-ग्रन्थ)

21. डॉ0 लक्ष्मी नारायण लाल : हिन्दी कहानी की शिल्प-विधि का विकास (शोध प्रबन्ध)

22. डॉ0 सत्येन्द्र : साहित्य सन्देह, कहानी विशेषांक, पृष्ठ 339

23. पर्सीलबक : दि क्राफ्ट आफ फिक्शन प्रीफेस, पृष्ठ 5, 6 संस्करण 1954

24. डॉ0 प्रेम नारायण टण्डन : साहित्यिक शब्दावली, पृष्ठ 270

25. डॉ0 रघुवीर : सी0 ई0 एच0 डिक्सशनरी, पृष्ठ 1432

26. पारिभाषिक शब्द संग्रह : शिक्षा मन्त्रालय प्रकाश, पृष्ठ 1241

27. चैम्बर्स ट्वेण्ट्रीयथ सेन्चुरी डिक्शनरी, पृष्ठ 1132

28. Van O"Conner : Forms of Fiction, P. 9

29. Professor Katherine Lener : The Novel and The Reader, P. 87

30. वृहत हिन्दी कोश, पृष्ठ 1234

31. शिल् का तात्पर्य धान की फसल कट जाने के बाद में गिरी हुई बालियां था, जिन्हें चुन लिया जाता था।

32. डॉ0 मंगल मेहता : स्वांतन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी : वस्तु-विकास एवं शिल्प विधान, पृष्ठ 149

33. जैनेन्द्र कुमार : साहित्य का श्रेय और प्रेय, पृष्ठ 370

34. उद्धृत : कथ्ह्राकार राहुल सांस्कृत्यायन – डॉ0 रवेल चन्द्र आनन्द, पृष्ठ 54

35. डॉ0 (श्रीमती) ओम शुक्ल : हिन्दी उपन्यास की शिल्प–विधि का विकास, पृष्ठ17

36. कमलेश्वर – नई कहानी की भूमिका, पृष्ठ 102

37. डॉ0 लक्ष्मीनारायण लाल : हिन्दी कहानियों की शिल्प–विधि का विका, पृष्ठ 2

38. आकशवाणी विविधा : 1960 (कला में शिल्प)

39. डॉ0 आदर्श सक्सेना : हिन्दी के आंचलिक उपन्यास और उनकी शिल्प–विधि पृष्ठ 51–52

40. डॉ0 सत्यपाल चुघ : प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों की शिल्प–विधि, पृष्ठ 13

41. डॉ0 कैलाश वाजपेयी : आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प, पृष्ठ 19

42. डॉ0 मोहन अवस्थी : आधुनिक हिन्दी काव्य शिल्प, पृष्ठ 6–7

प्रगतिवादी कवियों की काव्य-कृतियों में प्रयुक्त अलंकार योजना

- डॉ0 सीमा शर्मा
अंशकालिक प्रवक्ता, हिन्दी विभाग

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भावों का उत्कर्ष दिखाने और वस्तुओं के रूप, गुण और क्रिया का अधिक तीव्र अनुभव करने में कभी-कभी सहायक होने वाली युक्ति को अलंकार माना है। शुक्ल जी के इस कथन से कई उपप्रमेय निकलने की संभावना है।

(1) अलंकारों का प्रयोग कवि भावोत्कर्ष दिखाने तथा वस्तुओं के रूप, गुण और क्रिया का अधिक तीव्र अनुभव कराने के लिए जान-बूझकर सायास करता है।

(2) अलंकारों का प्रयोग भावोत्कर्ष दिखाने तथा वस्तुओं के रूप, गुण और क्रिया का अधिक तीव्र अनुभव कराने के लिए कवि द्वारा आप-से-आप अर्थात् अनायास हो जाता है।

(3) अलंकार भावों का उत्कर्ष तथा वस्तुओं के रूप, गुण और क्रिया का अधिक तीव्र अनुभव कराने में कभी-कभी ही सहायक होते हैं, सदैव नहीं।

इन उपप्रमेयों के परिप्रेक्ष्य में 'प्रगतिवादी कवियों के काव्य में अलंकार - योजना' पर विचार करने से पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि कुछ कवि तो सचेत कलाकार होते हैं, कुल अचेत। जो अपनी कला के प्रति जागरूक होते हैं, वे अपनी कविता में अलंकार - प्रयोग का अनेकानेक कवि हैं, जिनमें सायास साधना की प्रवृत्ति देखी जा सकती है। कहीं-कहीं चौंकाने की प्रवृत्ति के कारण अलंकार निर्मित किया जाता है। बिहारी का ही एक दोहा लें-

अधर परसि मीठी भई, दई हाथ ते डारि।
लाई दतुवन उख की, नोखी खिदमत गारि।

अर्थात नायिका के ओठ पर चाहें दस-बीस किलो चीनी की ही कोटिंग क्यों न हो, उसके स्पर्श से नीम की कड़ी दंतुवन का मीठा होना तद्गुण के लोभ में क्लिष्ट कल्पना ही नहीं, वरन् असंभव कल्पना है।

मंडित स्थलों को देखकर कहीं भी ऐसा नहीं लगता कि प्रगतिवादी कवियों ने चौंकाने के लिए या अलंकार के लक्षणों को उदाहरण करने के लिए अलंकारों का प्रयोग किया हो। ऐसा भी नहीं लगता कि वे महज अलंकार के लिए अलंकार गढ़ने के पक्षपाती हों। अलंकार की जादूगरी या आतिशबाजी उनके काव्य में कहीं नहीं हैं, वैसे कुछ स्थल अवश्य मिलते हैं, जहाँ अलंकारों की कारीगरी पर मुग्ध हो जाना पड़ता है।

प्रगतिवादी कविता जनसाधारण के उपयोग की वस्तु है अतः वह अत्यन्त सरल है। उसमे छायावादी दुरारूढ़ कल्पना का बहिष्कार कर कलाकार जीवन की वास्तविकता को लेकर इस धरती पर चला है। जहाँ तक अलंकार का प्रश्न है, प्रगतिवादी कवियों ने 'अन्योक्ति' के माध्यम से व्यंग्य को मुखर किया । इनकी उपमाएँ भावाभिव्यक्ति का साधन हैं, चमत्कार प्रदर्शन अथवा पाँडित्य प्रदर्शन का आधार नहीं। इनमें सम्प्रेषणीयता है, दुरूहता और क्लिष्टता नहीं। इनका अलंकार विधान प्राचीन आलंकारिक शैली से भिन्न सहज और

सरल होने के साथ-साथ स्वाभाविक है।

इस धारा के साथ एक यथार्थवादी काव्य-धारा का भी उल्लेख कर देना चाहिए जिसने समाज के जलते हुए यथार्थ की प्रतिष्ठा हिन्दी साहित्य में की। यह मिथ्या दार्शनिकता, थोथे और निरपेक्ष आदर्शवाद एवं पलायनवाद की प्रतिक्रिया थी। इस धारा के कवियों ने असन्तोष, शोषण और निराशा के वे चित्र खींचे जिनसे जीवन का उपेक्षित अंग साहित्य के सामने आया। यह धाराऐं ऐतिहासिक गौरव और अतीत की स्वर्ण संस्कृति को भौतिकता की चकाचौंध में भी नहीं भूला। कल्पना और स्वप्न के झिलमिल आवरणों को इन कवियों ने चीर दिया। निरपेक्ष सौन्दर्य भावना और कल्पित आत्मानन्द के स्थान पर क्रूर और वीभत्स वस्तु स्थिति सामने आने लगी। इस प्रकार नवीन संवेदनाओं को इस धारा ने जगाया। शोषण के चित्रों में क्रान्ति और प्रतिहिंसा सूचित होने लगी। विकृतियों की ओर यथार्थवादी कवियों का विशेष ध्यान रहा। प्रगतिवादी कलाकार जितनी अनुभूति के सम्बन्ध में चिन्तित है उतना अभिव्यक्ति-पक्ष के सम्बन्ध में नही। कवि पन्त का कहना है -

तुम वहन कर सको, जन-मन में मेरे विचार।
वाणी मेरी चाहिए क्या तुम्हे अलंकार।।

प्रगतिशील साहित्य का मूल्यांकन करते हुए डॉ0 रामविलास शर्मा इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि "प्रगतिशील साहित्य युग की माँग को पूरा करने वाला साहित्य है। उसकी शक्ति इस बात में है कि वह समाज के वास्तविक जीवन के निकट है। ..... जो साहित्य जनता का पक्ष लेगा वह अवश्य ही शक्तिशाली होगा और अजेय गति से आगे बढ़ता जायेगा। .... लेखक के लिए मूल समस्या यह है कि हम अपने साहित्य की जातीय विशेषताओं की रक्षा करते हुए "किस तरह उन्हें विकसित करें कि हमारी जनता की चेतना निखरे और वह आज के दुखों और अभावों की दुनियाँ से निकलकर सुख और स्वाधीनता के प्रकाश में साँस ले सके"।

निष्कर्ष रूप में यही कहा जा सकता है कि प्रगतिवाद में अपनी ही जीवन शक्ति है जिसे उन्होने अपने नये-नये अलंकारों का प्रयोग कर निखारने का प्रयास किया है। उत्साह और चैतन्यता उनकी आलंकारिक - योज़ना में विशेष रूप से दिखाई देती है। इसीलिए उनकी शैली में उपमाएँ और रूपक अत्यन्त सरल है। सुमित्रानन्दज पंत का ही एक उदाहरण देखिए -

मेरे आँगन में (टीले पर है मेरा घर)
दो छोटे से लड़के आ जाते हैं अक्सर
नंगे तन, गदबदे, साँवरे, सहज छबीले,
मिट्टी के मटमैले पुतले - पर फुर्तीले

- सुमित्रानन्दन पंत

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि अलंकारिता प्रगतिवादी कवियों के काव्य में स्पष्ट रूप से झलकती है और इनका भविष्य समाजवाद के भविष्य के साथ बँधा हुआ है। प्रगतिवाद ने सौंदर्य को नये दृष्टिकोण से देखा। प्रगतिवादी कवि वर्तमान जन-जीवन में व्याप्त सौंदर्य को अपनी अलंकार योजना के माध्यम से अभिव्यक्त करता हैं। सौंदर्य का सम्बन्ध हमारे

हार्दिक आवेगों और मानसिक चेतना दोनों से होता है और इन दोनों का सम्बन्ध सामाजिक चेतना से होता हैं। नये समाज में पलने वाला अथवा उसके साथ चलने का प्रयास करने वाला कवि खोजता तो है परन्तु उसके सौंदर्य का वितान यथार्थ के स्तम्भों पर ही तना हुआ दिखाई देता है। अलंकार व प्रतीक उसकी इस अभिव्यक्ति में उसका पूर्ण साथ देते हैं, बाधक नहीं बनते। प्रसिद्ध मार्क्सवादी दार्शनिक एन0 जी0 चरनीशवस्की के शब्दों में मनुष्य को जीवन सबसे प्यारा है, इसलिए सौंदर्य की यह परिभाषा अत्यन्त सन्तोषजनक प्रतीत होती है – "सौन्दर्य ही जीवन है।" प्रगतिवादी कवियों ने सरल अभिव्यक्ति से जन-जन के मन को स्पर्श कर अलंकार को दैनिक जीवन के लिए उपयोगी बना दिया। प्रगतिवादी कवियों ने अलंकारों के माध्यम से अपने काव्य को मुखर किया। उन्होने अपने काव्य में नये-नये उपमानों एवं प्रतीकों को अपनाकर सौंदर्य की अभिव्यक्ति को नई दिखा प्रदान की है। इसलिए उनके काव्य में कहीं भी क्लिष्टता नहीं है। इनका अलंकार विधान प्राचीन आलंकारिक शैली से भिन्न सहज और सरल होने के साथ-साथ स्वाभाविक है। अलंकार विधान की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उपमान और उपमेय एक स्वतः सम्भूत रागात्मक सम्बन्ध में बँधे हुए मिलते हैं। उपमेय पर कवि अधिक ठहर नहीं सकता। यदि उपमेय पर वह अधिक ठहर जाता है तो विशेषण बहुतस शैली का जन्म होता है। यदि उपमेय के संकेत को उपमान की समिति से कवि प्रेषित करता है तो अलंकार सच्चे अर्थ में सौंदर्य का उपकरण बन जाता हैं। प्रगतिवादी कवियों ने अलंकारों के द्वारा अपने हृदयस्थ भावों को रूप प्रदान किया है, उन्हें गीतात्मकता प्रदान की है और उन्हें पाठकों के लिए सर्वथा सुलभ बनाया है। निस्सन्देह इन सभी अलंकारों के भावानुकूल होने के कारण प्रगतिवादी कवियों की अलंकार – योजना में भाव-प्रेषणीयता का गुण सबसे अधिक दिखाई देता है। प्रगतिवादी कविता चूँकि सामाजिक जीवन की वास्तविकता को लेकर चली, जनता तक पहुँवना और जनता के जीवन की ही बात कहना उसका लक्ष्य रहा है, इसलिए वह छायावाद की वायवी, असामान्य, रेशमी परिधानशालिनी और सूक्ष्म भाषा को छोड़कर सुस्पष्ट, सामान्य प्रचलित भाषा को अपनाकर चली। प्रगतिवादी कवियों ने अलंकारों के सहज प्रयोग पर जोर दिया है। उनके काव्य में आये अलंकार सहज निश्छल, स्वाभाविक, काव्योत्कर्ष में सहायक और भावोपम है। कवियों ने उस समय में फैली हुई विषमताओं एवं पूँजीवादी व्यवस्था के द्वारा फैले अत्याचारों को अपने अलंकारों के उपयोग से प्रस्तुत करने का प्रयास कियाहै। कभी-कभी तो उनके अलंकारों में उनका विद्रोही मुखर हो उठता है तो कभी वह प्रकृति व मानव प्रेम से परिपूर्ण दिखाई देता है। प्रगतिवादी कवियों के काव्य को देखकर पता चलता है कि उनका प्रमुख उद्देश्य सामाजिक यथार्थ का इस प्रकार चित्रण करना है कि कुरूप, शोषक, सड़ी-गली विसंगतिग्रस्त शक्तियों का पर्दाफाश हो सके और नयी सामाजिक शक्तियों के संघर्षो, युयुत्सा और आस्था को बल मिले। प्रगतिवादी कविता चूँकि सामाजिक जीवन की वास्तविकता को लेकर चली, जनता तक पहुँचना और जनता के जीवन की ही बात कहना उसका लक्ष्य रहा है, इसलिए उन्होने अपने काव्य को निखारने के लिए आलंकारित शैली का सफल प्रयोग किया है।

Hardy and R. K. Narayan's Regionalism

Mrs. Reeta Sharma

Part Time Lecturer, Department of English
D.A.V. (P.G.) College, Bulandshahr

R. K. Narayan and Thomas Hardy achieved great fame and popularity on account of having a heightened sense of locality ie. Malgudi and Wessex. Thomas Hardy's Wessex is particular landscape which is fully included in his writings. Since the end of the 8th century, there has been a heightened sense of locality in English literature. The fact that Milton was a Londoner, does not have much effect on our appreciation of 'Paradise Lost' but the fact that Wordsworth was a dalesman of the lake country. Sir Walter Scott was the first great novelist to make this modern feeling for the character of places. His Waverly novels are not only a series of great and moving stories but also a complete portraiture of the Scotland that he knew and loved so well. A service similar to that which he performed for the Scottish lowlands was rendered by Hardy to certain parts of rural England more than half a century later.

Hardy's eighteen books of fiction deal with Wessex. The word 'Wessex' was until the last quarter of the 19th century a purely historical term defining the south western region or the island of Britain that had been ruled by the West Saxons in early Middle Ages. But since Hardy unearthed the word and used it in his novels and poems, it has come to mean more and more people a district to some degree contermines with the Saxon kingdom populated by characters sprung from the novelist's imagination. Indeed, Wessex has come to mean the whole culture predominantly rural and pre industrial bound in Hardy's novels and poems. So powerful and widely disseminated has been Hardy's imaginative creation that even during his life time Wessex was being used once again in the traffic of everyday life to denote a region of vague extent in south western England.

The Wessex of Hardy has no very clearly defined limits. Bounded on the south of the English Channel, it stretches as far west as Cornwall as far north as Oxford and as far East as Windor. But its center and true home of Hardy's art is his native country of Dorset. Dorset is one of the most historic English countries, and in the 19th century, it was one of the most conservative and backward. When Hardy was a boy, it was still hardly touched by the great Industrial revolution. It was a country of sleepy old towns and secluded villages, where old custom still survived and where the social fabric had undergone the little change for centuries.

In Wessex, the legendary kingdom bequeathed by Alfred where

almost all his scenes are laid, Hardy was king. He was the unchallenged monarch of the countries of Berkshire, Willshire, Somerset, Hampshire, Dorset and Avon united under the sceptre of his pen what authority he wielded in a country which owed to him the revelation of the beauty. It was Hardy who used both extensively and intensely the whole region of England. He found full material for his works in this region. He took characters from this region. He used the landseape Wessex for these novels. He thus succeeded in giving local colour to his novels without letting it degenerate into narrow provincialism. He also utilized the manner and custom of this region for his novels.

Like Hardy's Wessex, Malgudi is the chosen region which forms the background to the works of Narayan. Malgudi is Narayan's Casterbridge. Malgudi is a district town, growing and developing, though not as big as Madras. It is situated on the banks of the river Sarju which is the pride of Malgudi and a favourite picnic spot. It is quite close to Eilliman street. To the north west of the town, lies Nallapas Mango Grove. The river, here is shallow and can be crossed easily. In the east of town is situated the Taluk Office and the town Clock which strikes the hours at regular intervals. Malgudi has its own railway station from which trains go to big cities like Madras and also branch office to small town of the presidency (now to state of TamilNadu). It is from this station that Margayya leaves for Madras. It has also two clubs one for the Europeans and the other for the Indians. There is also a cinema hall. There are also a few hotels, photograph studios and printing presses. There are also two high schools. One board school and the other Albert Mission school. There is also a degree college-Albert Mission College. There are lawyers, doctors, professors and high ranking government officials who had newspapers and hence the newspapers enjoy a good role in the town. Malgudi is a growing and developing south Indian town. There are a number of extensions which are nothing but newly founded colonies. It is like old Delhi and new Delhi existing side by side. The extensions are the best localities of Malgudi and more enlightened and modernised people live in their extensions. On the south west of the town, is situated the best localities like Lawly extension and new extension beyond extension passes the Trichy Trunk Road, shaded with trees. Then there is the market road which interests the Race course road. There are also various lanes and streets such as Kabir street and Kabir lane, Sanju street and Anderson lane, Vinayak Mudali street where Margayya and his brother live and Abulane, Ellaman Street and hospital road etc. There are also few temples like the one in which Margayya goes with the priest and carries on Lakshmi pooja at his suggetion. On the other hand, R. K. Narayan shows the Indianness in his novels including religion and Hardy shows English country life

including religion.

R. K. Narayan, through his novels and short stories has given Malgudi, a definite identity of its own. It comes to life and lives in the pages of his novel, changing, growing and developing with each successive novel. All kinds of people live in this town and by careful selection of details, Narayan has made microcosm of India as a whole what happens in Malgudi, happens all over India in every town and village.

Hardy also gives such type of identity. Foreign culture with superstitions can be seen in 'Tess'. Malgudi's persons also are superstitious and closely adhere to age old customs and traditions. An account is also given of the jealousies and rivalries as that between Margayya and his brothers family who as his next door neighbours. Margayya performs Jap and Puja and secures the favour of goddess Laxmi. So religion element is also found in this novel. As the same in 'Tess', we find element of religions. Angel Clare's family is the most clear symbol of Hardy's views on religion. Hardy has painted a very noble picture of Angel's father, Rev–James Clare, the parson, of Emminister, not that he did not have his faults yet he and his wife were noble Christian souls deserving our deferential admiration.

Hardy developed fully English country in his novels, similarly, Narayan also has showed Indianess in his novels. Narayan is a novelist in the Indian tradition and his novels including "The Financial Expert" are the western art form. Narayan's Indianness is further seen in various other ways which may be summarized. He has a great regard for family ties and the family living.

We also get interesting glimpses of Indian social and political life and the extreme poverty and ignorance of the Indian masses. Regional effects can be seen also taking money out of collection for the disposal of an unclaimed dead body. The corrupt features of politics like pre election promises. Municipal officials come to repair the drain only during pre, election days with an eye on the votes there and never come against to keep their promises.

Hence, It may be concluded that regional aspects make a considerable imaginative step in their understanding of eternal landscapes with the mighty pen of Thomas Hardy and R. K. Narayan. ●

महादेवी-काव्य में दुःख, वेदना एवं करूणा

डॉ. (श्रीमती) उर्मिला शर्मा
रीडर, हिन्दी विभाग

वेदना, करूणा और दुःखानुभूति की अभिव्यक्ति काव्य में आदिकाल से ही होती रही है। आदि कवि बाल्मीकि ने करूण भात से प्रेरित होकर ही प्रथम छन्द की रचना की थी। क्रोंच-मिथुन में से एक के बाण से विद्ध हो जाने पर दूसरे की विरह व्यथा से सिक्त होकर उनके मुखारबिन्दु से जो शब्द सहसा प्रस्फुटित हुये, वे ही छन्द बन गये -

"मा निषाद! प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वती समाः
यत्क्रौच मिथुनादेक वधीः काम मोहितम्।।"

अस्तु, करूणा और वेदना ही काव्य का आदि स्त्रोत है। वेदना अन्तर्जगत की एक ऐसी व्यापक वृत्ति है, जो सुखात्मक और दुःखात्मक दोनों प्रकार की हो सकती है। वैयक्तिक एवं लौकिक पीड़ा का आधार पाकर यह दुःखात्मक वेदना समष्टिगत अथवा परोक्ष का आलम्बन पाकर सुखात्मक बन जाती है। इसी आलम्बन की पृथकता के आधार पर इसके दो भेद किये जा सकते हैं -लौकिक एवं अलौकिक (आध्यात्मिक) वेदना! हिन्दी काव्य धारा में इन दोनों का चरम उत्कर्ष मिलता है।

हिन्दी काव्य धारा की सुदीर्घ परम्परा में वेदना भाव को समग्रतः वाणी प्रदान करने वाली एकमात्र कवयित्री महादेवी जी ही हैं। वह पीड़ा या वेदना के राज्य की एक छत्र साम्राज्ञी हैं। उनके गीतों में दुःख वेदना और करूणा का जो प्रबल प्रवेग मिलता है, उसका स्वरूप वाहयतः एक भले ही प्रतीत होता हो परन्तु उसके अन्तः स्त्रोत भिन्न-भिन्न हैं। प्रायःसमालोचकों ने इसे एक मानकर उनके सूक्ष्म रूप को उद्घाटित नहीं किया। अतः अनेक भ्रान्तियाँ उत्पन्न हुई हैं। स्थूल दृष्टि से तीनों भावानुभूतियाँ एक भले ही प्रतीत हों परन्तु सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर इनके मूल स्त्रोत एवं स्वरूप का अंतर स्पष्ट हो जाता है। महादेवी के काव्य में इन तीनों भावानुभूतियों का स्वरूप स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। उनके दुःखवाद में उनके वैयक्तिक जीवन की विषमताओं, अभाव एवं एकाकी जीवन की व्यथा एवं पीड़ा है, वेदना भाव में अन्तर्जगत की चेतना का उज्ज्वल प्रकाश, आध्यात्मिक प्रणय वेदना तथा करूणा में समष्टिगत दुःख, बौद्ध दर्शन का क्षणिकवाद एवं संसार के दुःख दैन्य के प्रति संवेदना का भाव प्रमुख है। महादेवी ने इन तीनों भावों का जो लोकोत्तर चित्रण किया है, उनमें स्पष्टतः कोई विभाजक रेखा खींचना कठिन है परन्तु यदि ध्यान पूर्वक देखा जाय तो उन तीनों भावों का सूक्ष्म अन्तर स्पष्ट हो जाता है। वस्तुतः महादेवी जी का जीवन ऐहिक या भौतिक अभावों से मुक्त रहा। वह सम्पन्न परिवार में जन्मी तथा एक गरिमामय पद पर प्रतिष्ठित रहीं। संसार जिसे सुख समझता है, वह सभी साधन उन्हें उपलब्ध रहे, परन्तु भावात्मक स्तर पर वह सदैव एक अभाव का अनुभव करती रहीं। उनका भावुक मन संवार के दुःख दैन्य से इतना अभिभूत रहा कि अपना राजसी वैभव भी उन्हें तुच्छ प्रतीत होता रहा। अनेक गीतों में इस प्रकार की दुःखानुभूति का अंकन मिलता है।

"कह दे माँ अब क्या देखूँ?
देखूँ खिलती कलियाँ या
प्यासे सूखे अधरों को
तेरी चिर यौवन सुषमा
या जर्जर जीवन देखूँ"

इस संसार में दुःख ही दुःख है। अतः दुःख को सुख समझ कर स्वीकार करने की बात महादेवी जी करती हैं -

"हँसो पहनो कांटो के हार
मधुर, भोले वन के संसार"

वह संसार को दुःखमय मानती हैं परन्तु उन दुःख और पीड़ा को लेकर वह कहाँ जावे? दुःख के व्यापक प्रभाव को कितनी मार्मिकता से व्यंजित किया है-

"लिये कैसे पीड़ा का भार
देव: आऊँ अनन्त की ओर"

दुःखमय संसार का एक अन्य चित्र देखिए -

"सजल मेघ सा धूमिल है जग
बाहर घनन्तम भीतर दुःख तम"

महादेवी जी की दुःखप्रियता का एक अन्य कारण भी माना जाता है। उनका असफल दाम्पत्य जीवन, जिसे लक्ष्य कर कई विद्वानों ने उनके काव्य पर कुंठा, अतृप्ति का आक्षेप किया है परन्तु मेरे विचार से दुःख के प्रति लगाव परिस्थितियों की उपज कम, मन की एक विशिष्ट दशा एवं विश्वास का परिणाम अधिक है क्योंकि उन्होने स्वयं ही स्वीकार किया है कि गौतम बुद्ध की संसार को दुःखमय समझने की फिलासफी से असमय में ही परिचय हो गया था। यह परिचय उनके भावुक मन की गहराइयों में उतरकर दुःख एवं वेदना प्रियता का कारण बना। अनजाने ही वह एक रहस्यमय पथ पर बढ़ चलीं। आगे चल कर यही पथ उनके जीवन का गन्तव्य बन गया, जिस पर चल कर दाम्पत्य जीवन की असफलता का विषाद स्वयं धुल गया परन्तु उसकी कौंध उनके प्रारम्भिक गीतों में परिलक्षित की जा सकती है उदाहरणार्थ -

"जो तुम आ जाते एक बार
कितनी करूणा कितने संदेश पथ में बिछ जाते बन पराग
गाता प्राणों का तार-तार उन्माद भरा अनुराग।।"

परन्तु उनके एकंगतिक जीवन का करूण सौन्दर्य संयम की सीमा को न लांघकर भारतीय नारी की गरिमा एवं महिमा के अनुकूल ही अंकित है।

महादेवी के काव्य का दूसरा महत्वपूर्ण पक्ष उनका वेदनाभाव है। उनके काव्य में आद्योपान्त वेदना की अजस्र धारा प्रवाहित हो रही है। वह अनन्त प्रियतम की प्रेयसी हैं और निरंतर अपने प्रिय की प्रतीक्षा में दिन गिनगिन कर जीवन बिता रही हैं। उन्होने रहस्यवादी कवियों की भाँति निराकार बोध को रूपक के माध्यम से अपने काव्य में मार्मिक अभिव्यक्ति दी है। सूक्ष्म प्रिय की प्रेयसी का मिलन सम्भव नहीं। लौकिक विरह में पहले मिलन तत्पश्चात, विरह की घड़ी आती है परन्तु अलौकिक प्रणय में पहले विरह पश्चात मिलन के क्षण आते हैं। अतः विरह

की निरन्तरता एवं तीव्रता का चित्रण सभी रहस्यवादी कवियों ने किया है। महादेवी जी का संपूर्ण काव्य इस विरह का ही पर्याय है। परन्तु पूर्व मिलन के सांकेतिक चित्रों का हृदयहारी स्वरूप भी मिलता है पूर्व मिलन के सांकेतिक चित्रों का स्वरूप दृष्टव्य है –

"इन ललचाई पहकों पर पहरा था उस ब्रीडा का
साम्राज्य मुझे दे डाला उस चितवन ने पीड़ा का
उस सोने के सपने को देखे कितने युग बीते
आंखों के कोष हुए हैं, आंसू बरसा कर रीते।"

विरहिणी आत्मा प्रतिपल, प्रतिक्षण प्रतीक्षारत रहती हैं। न जाने कब उसका असीम प्रिय आ जाय। एक विरहिणी के हृदय की मादक एवं रम्य अभिलाषाओं का चित्र देखिए –

"अलि कैसे उनको पाऊँ?
वे आंसू बनकर मेरे इस कारण ढुलढुल जाते
इन पलकों के बंधन में मैं बाँध बाँध पछताऊँ।"

विरह की निरन्तरता में वह इतना तल्लीन हो जाती है कि पीड़ा ही प्रिय बन जाती है –

"तुमको पीड़ा में ढूँढा तुममे ढूंढूगी पीड़ा?

इस पीड़ा को पाकर वह अमरों के लोक को भी ठुकरा देती है :–

"क्या? अमरो का लोक मिलेगा
तेरी करूणा का उपहार।।
रहने दो हे देव! मुझे
मेरे मिटने का अधिकार।"

इस प्रकार साधना पथ पर बढ़ती कवयित्री उस भाव भूमि पर पहुँच गयी है जहाँ प्रेयसी और प्रिय का भाव ही समाप्त हो गया है। विरह की घड़ियाँ मधुर मधु की यामिनी बन गयी हैं।

इस प्रकार महादेवी का वेदना भाव रहस्यवाद की प्राचीन परिपाटी पर आधृत होने पर भी नवीन भावों से ओतप्रोत है।

महादेवी जी की प्रणय वेदना का पर्यावसान करूण भावना के रूप में हुआ है। उनके काव्य में करूणा की जो आर्द्रता है, उसका कारण बौद्ध दर्शन का प्रभाव है। साधना के चरम उत्कर्ष पर पहुँच कर उनका वेदना भाव करूणा भाव में एकाकार हो गया है। उनका प्रसिद्ध गीत 'नीर भरी दुःख की बदली' में यह भाव परिलक्षित किया जा सकता है। वेदना या करूणा ही आत्म विस्तार का पथ प्रशस्त करती है। देखिए –

कोई यह आंसू आज मांग ले जाता
तापों से खारे जो विषाद से श्यामल
अपनी चितवन से छान इन्हें कर मधु जल
फिर इनसे रचकर एक घटा करूणा की
कोई यह जलता व्योम आज छा जाता।

इस प्रकार निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि महादेवी जी के गीतों में दुःख, वेदना एवं करूणा की जो मन्दाकिनी प्रवाहित हो रही है, उसमें अचगाहन कर कोई भी साहित्य प्रेमी अपने को धन्य समझ सकता है।

विरह का जल जात जीवन

- डॉ0 रानी बाला गौड़
रीडर, हिन्दी विभाग, डी0ए0वी0 कालिज, बुलन्दशहर
पूर्व सदस्य, जिला उपभोक्ता न्यायालय, बुलन्दशहर

ऐसा कोई एक अज्ञात प्रियतम अवश्य है जिसका अभाव कवयित्री को अपने जीवन में अवश्य खला है और जिसे पाने की प्यास ने उन्हें उदास नहीं बनाया है। निरन्तर बढ़ने की शक्ति जैसे उसने कवयित्री के पगों में भर दी है। यही कारण है कि वे रूकना नहीं जानती। रूकना मृत्यु का लक्षण है और बढ़ना जीवन का चिन्ह जिसे महादेवी सब कुछ सहन करके भी अपनाती हैं। विषाद की विषण्णता महादेवी के काव्य को आक्रांत नहीं कर पाई है। सर्वत्र उनका संयम, धैर्य विद्यमान रहा है। संयम का बांध तोड़कर बहने वाला काव्य महादेवी का नहीं है उसमें नारी सुलभ लज्जा है जो उनके विरह की ज्वाला का शमन करती है, उनकी उदास भावनाओं पर नियंत्रण रखती है, उनकी कल्पनाओं को अमरों के लोक में उड़ने पर वर्जन करती है और आंसुओं की सरिता को फलों से बाहर न बहने का आदेश देती है।

कवयित्री महादेवी की काव्य यात्रा का प्रारम्भ 'नीहार' से हुआ और अंतिम काव्य रचना 'दीपशिखा' पर समाप्त हुआ। उनकी निराशा ने यदि 'नीहार' की सृष्टि की तो 'रश्मि' एक आशा की किरण लेकर उनके जीवन प्रभात में उदित हुई। उनकी श्रद्धा ने यदि 'नीरजा' का निर्माण किया तो 'सांध्य गीत' एक सुखद गोधूलि का वातावरण और विराम एवं विश्राम की बेला बनकर उतर आया। प्रारम्भिक चार काव्य ग्रंथों की कवयित्री ने जिस एक ही ग्रन्थ में गूंथ दिया उसका नाम उन्होने रखा 'यामा'। श्री विश्वम्भर मानव ने 'यामा' और 'दीपशिखा' के उपरान्त किसी ऐसे काव्य ग्रन्थ की आशा महादेवी से की थी जो 'विहान' नाम का होता परन्तु कवयित्री ने ऐसी काव्य रचना प्रस्तुत नहीं की। वास्तविकता यही है कि 'दीपशिखा' ही उनका अंतिम काव्य कुसुम है जिसे सरस्वती के मंदिर में अर्पित कर उन्होने उपराम ले लिया। इन काव्य ग्रन्थों में महादेवी का व्यक्तित्व भी उत्तरोत्तर विकसित होता गया है। यदि 'नीहार' में उनका व्यक्तित्व नीरवा है तो 'रश्मि' में रक्तिम, यदि 'नीरजा' में निखरा है तो 'सांध्य गीत' में संवरा है। 'दीपशिखा' तो 51 दीपों की दीपमालिका ही है जिसे महादेवी ने अपने मन मंदिर के आराध्य के समक्ष प्रज्वलित किया है। नभ की दीपावलियों को भी उन्होंने मना कर दिया है क्योंकि संभावना ऐसी है कि आराध्य कहीं उनके प्रकाश में अन्यों को दृष्टिगोचर न हो जाय। अपने जीवन के सूनेपन को मिटाने के लिए ही उन्होने यह दीपमालिका जलाई है जो उन्हें पूर्ण रूप से दीप्त रखेगी :-

अपने इस सूनेपन की मै हूँ रानी मतवाली।
प्राणों का दीप जलाकर करती रहती दीवाली।।

रात्रि की निस्तब्धता एवं निविड़ता में कभी-कभी कवयित्री मरण का गीत गाने लगती है तो कभी नगराज हिमालय का चित्र खींचने लग जाती है और कभी कजरारे काले बादलों की गर्जना को सुनकर गीत गुनगुनाने लगती है तो कभी जीवन रात्रि के दोनों छोरों-गोधूलि एवं प्रातःकाल की धुंधली और रंगीन आभा से अपने काव्य को मंडित करने लगती है। प्रियतम उन्हीं में खो गया है। उसको बुलाने के लिए उन्होंने न तो किसी दूत को भेजा है और न संदेश ही भिजवाया है। उन्होंने घनानंद की भांति उस 'अविश्वासी एवं विश्वासघाती' के आंगन में अपने आंसुओं को बरसाने के लिए बलाहकों को भी नहीं बुलाया है। निस्संदेह इस अर्थ में महादेवी पूर्ववर्ती विरहियों से एकदम भिन्न हैं।

FEMINIST CONCERNS in SHOBHA DE's 'SNAPSHOTS'

Ms. Monika Singh
Research Scholar
Department of Postgraduate Studies
and Research in English
D.A.V. (P.G.) College Bulandshahr

Since times immemorial women are fighting to set themselves free from the male oppression. The feminists are making their protest against the legal, social and economic restrictions being laid on the essential rights of women. After the suffragists won the vote for American women in 1920, there was once again a re–awakening of the feminist feelings in the 1960's.

The 1906 edition of the Dictionary of Philosophy, defined Feminism as "a position favourable to the rights of women". The Webster's Dictionary defines the term 'Feminism' as :–

(a) the principle that women should have political rights equal to those of men; (b) the movement to win such rights for women.

Truly speaking, feminism is a philosophy which ultimately aims at placing women in a true and just perspective. Feminism shouldn't be confined to the advocacy of the rights of women whereas it refers to an intense awareness and interest in feminine issues and problems. Feminism is not merely a belief system rather it needs action so as to achieve women's liberation. Feminism is a political movement which aims at changing the existing power relations between women and men in the society.

In her book 'THE SECOND SEX' Simone de Beauvoir writes as :-

"The terms masculine and feminine are used symmetrically only as a matter of form, as on legal papers. In actuality, the relation of the two sexes is not quite like that of two electrical poles, for man represents both the positive and the neutral, and is indicated by the common use of man to designate human beings in general; where as woman represents only the negative, defined by limiting criteria, without reciprocity ..... A man is in the night in being a man; it is the woman who is in the wrong. It amounts to this : just as for the ancients there was an absolute vertical with reference to which the oblique was defined, so there was an absolute human type, the masculine".

Shobha De burst upon the literary scene in 1988 with her novels like 'Socialite Evenings', 'Starry Nights', 'Sisters', 'Strange Obsession', 'Sultry Days' and 'Snapshots'. Shobha De also claims to be "among the first to explore the world of urban women in India". She posseses a deep understanding of the psyche of urban women and their problems. She raises the feminist issues to shatter patriarchal hegemony. Her female

characters are deliberately eager to challenge the moral orthodoxy and social taboos. Her explosive novel 'Snapshots' is essentially a feminist work which centres round the lives of six women :– Aparna, Rashmi, Swati, Reema, Noor and Surekha who were friends during their school days at Santa Maria High School. All of them come from the upper strata of the society. In the course of the novel, we find that through their conversation and behaviour, Shobha De throws light on the predicament of the arrival of the new woman in India. However, Shobha De's women have come up with an intense awareness of gender roles and gender identity as well. Shobha De strongly rejects the very idea of women being tutored to think that silence is the best path. She writes :–

"Eventually, every relationship is a power struggle either on an overt or subliminal level ..... control over the situation has been a male prerogative over the centuries. Women's destinies have been determined largely in that context alone ..... It is time they were made aware of their own potential and power. Shakti needs to be harnessed, directed and exploited for the furtherance of overall human development. The very concept of the sexes locked in eternal battle is negative and destructive ..... when one talks of shakti unleashed, one also remembers the two connotations of Shakti - the destructive avtaar is as potent as the creative one. It is in maintaining the state of equilibrium between these two opposing forces that can lead to creative and dynamic harmony ..... Men will have to come to terms with woman power."

In 'Snapshots', so far as the equation of power is concered, Champabai, the brothel owner tells Rashmi :– "Never give yourself to any man for free. You know why? Men don't value anything they get so easily. That's why we are here to satisfy their lust, not for sex but power. Power over women. Power over us ..... you and me. If they buy you sex pay for you, they feel like kings. Give it to them with love for nothing and they'll kick you in the gut."

Apart from an intense awareness of gender identity, we even find glimpses of the economic aspects of power struggle in 'Snapshots'. The talk of women's liberation is futile and incomplete without their economic independence. Aparna is a corporate woman. Swati and Rashmi lead a 'liberated' life only because they are economically independent. All the six women seem to have realized that financial independence is must.

Shobha De's women characters regard marriage simply to be a convenient contract to lead a comfortable life which can be terminated at any time. In this context, Shobha De writes :–

"The terms underlying marriage have ..... been redefined in recent times. With some amount of economic freedom, women have changed the basic rules somewhat. If self-sufficient woman with a roof over her chooses to marry, it is because she wants to share her life with someone in the fullest sense, not because she is looking for a life

long meal ticket. Divorce, too, has got to be viewed in this light. A woman of independent means is not compelled to perpetuate a bad marriage because she has no where else to go."

In the novel, Reema and Surekha, had 'arranged marriages', Swati and Aparna are divorcees. Swati and her husband, "led separate but friendly lives ..... we loved each other dearly but we lead strictly individual lives."

Aparna is not ready to marry again at any cost and she hates the very word 'husband'. Noor is a charming young maiden who dies unmarried at the end of the novel. There lies no question of constancy and devotion in marriage for these women. Reema maintains :–

"Imagine not knowing any other body, any other feeling, any other sensation, forever sounds terrible. Like eating dal–chawal, day in and day out."

Shobha De maintains that sex is a beautiful necessity. She writes :–

"Sex is no longer the most dreaded and despised three letter word in India, is enough cause to celebrate."

The women in 'Snapshots' talk and practise sex very normally with perfect ease. They reject all the sexual taboos. Rashmi says :–

"That mediocre women make use of sex as a bait, the shrewd ones hold their men and keep them enslaved."

Women like Swati celebrate their sexuality ..... "We rejoice in our sexuality," says she, we don't supress it. We don't dismiss it. We don't find it dirty. Sex doesn't threaten us. I am not afraid to fuck. I feel sorry for all you women hanging on so desperately to outdated ideas of purity, morality and chastity. It's pathetic."

Women like Surekha and Reema deal with the plight of the neglected wife. Reema's husband Ravi, "was indifferent to his wife's disappointments and longings most of the time. It was when they impinged on his life and made him miserable that he felt drawn into her world."

Their relationship lacks warmth and excitement. The married life of Surekha is very much similar to that of Reema's. Surekha "hated having sex with her husband ..... detested every coupling".

She would often say :–

"What is there? It doesn't cost me anything? I open my legs mechanically and stare at the clock on the wall across the bed. It's all over in about six to eight minutes"

Thus we find that Shobha De has touched upon the varied aspects of the life and plight of an urban class women.

संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषाएँ एवं हिन्दी

-प्रोफेसर महावीर सरन जैन
पूर्व निदेशक, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा

संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषाएँ :-

संयुक्त राष्ट्र संघ की 6 आधिकारिक भाषाएँ हैं : 1- अरबी, 2- चीनी, 3- अंग्रेजी, 4- फ्रेंच, 5- रूसी, 6- स्पेनिश

(दे0 Year Book of the United Nations 1955, Vol. 49, pp. 1416–17, New York)

अन्य अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों की आधिकारिक भाषाएँ :-

संयुक्त राष्ट्र की ये 6 आधिकारिक भाषाएं अन्य अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों की भी आधिकारिक भाषाएँ हैं। उदाहरणार्थ : (1) अन्तर्राष्ट्रीय परमाणु ऊर्जा एजेंसी (IAEA) (2) अन्तर्राष्ट्रीय विकास एजेंसी (IDA) (3) अन्तर्राष्ट्रीय दूरसंचार संघ (ITU) (4) संयुक्त राष्ट्र शैक्षिक, वैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक संगठन (UNESCO) (5) विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) (6) संयुक्त राष्ट्र औद्योगिक विकास संगठन (UNIDO) (7) संयुक्त राष्ट्र अन्तर्राष्ट्रीय बाल-आपातिक निधि (UNICEF)

संयुक्त राष्ट्र की आधिकारिक भाषाएँ एवं हिन्दी :-

सन् 1998 के पूर्व, मातृभाषियों की संख्या की दृष्टि से विश्व में सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषाओं के जो आंकड़े मिलते थे, उनमें हिन्दी को तीसरा स्थान दिया जाता था। सन् 1991 के सैन्सस ऑफ इण्डिया का भारतीय भाषाओं के विश्लेषण का ग्रन्थ जुलाई 1997 में प्रकाशित हुआ (दे0 Census of India 1991 Series 1 – India Part I of 1997, Language : India and States Table C – 7) यूनेस्को की टेक्नीकल कमेटी फॉर द वॅल्ड लैंग्वेजिज रिपोर्ट ने अपने दिनांक 13 जुलाई, 1998 के पत्र के द्वारा यूनेस्को-प्रश्नावली के आधार पर हिन्दी की रिपोर्ट भेजने के लिए भारत सरकार से निवेदन किया। भारत सरकार ने उक्त दायित्व के निर्वाह के लिए मुझे पत्र लिखा। मैंने दिनांक 25 मई 1999 को यूनेस्को को अपनी विस्तृत रिपोर्ट भेजी।

मैंने विभिन्न भाषाओं के प्रामाणिक आंकड़ों एवं तथ्यों के आधार पर यह सिद्ध किया कि प्रयोक्ताओं की दृष्टि से विश्व में चीनी भाषा के बाद दूसरा स्थान हिन्दी भाषा का है। रिपोर्ट तैयार करते समय मैंने ब्रिटिश काउन्सिल ऑफ इण्डिया से अंग्रेजी मातृभाषियों की पूरी विश्व की जनसंख्या के बारे में तथ्यात्मक रिपोर्ट भेजने के लिए निवेदन किया। ब्रिटिश काउन्सिल ऑफ इण्डिया ने इसके उत्तर में गिनीज बुक ऑफ नालेज (1997 के संस्करण, पृष्ठ-57) फैक्स द्वारा भेजा। ब्रिटिश काउन्सिल द्वारा भेजी गई सूचना के अनुसार पूरे विश्व

में अंग्रेजी मातृभाषियों की संख्या 33,70,00,000 (33 करोड़ 70 लाख) है। सन् 1991 की जनगणना के अनुसार भारत की पूरी आबादी 83,85,83,988 है। मातृभाषा के रूप में हिन्दी को स्वीकार करने वालों की संख्या 33,72,72,114 है तथा उर्दू को मातृभाषा के रूप में स्वीकार करने वालों की संख्या का योग 04,34,06,932 है। हिन्दी एवं उर्दू को मातृभाषा के रूप में स्वीकार करने वालों की संख्या का योग 38,06,79,046 है जो भारत की पूरी आबादी को 44.98 प्रतिशत है। इस लेख के लेखक ने अपनी रिपोर्ट में यह भी सिद्ध किया कि भाषिक दृष्टि से हिन्दी और उर्दू में कोई अन्तर नहीं है। इस प्रकार ब्रिटेन, अमेरिका, कनाडा, आयरलैंड, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड आदि सभी देशों के अंग्रेजी मातृभाषियों की संख्या के योग से अधिक जनसंख्या केवल भारत में हिन्दी एवं उर्दू भाषियों की है। रिपोर्ट में यह भी प्रतिपादित किया गया कि ऐतिहासिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक कारणों से सम्पूर्ण भारत में मानक हिन्दी के व्यावहारिक रूप का प्रसार बहुत अधिक है। हिन्दीतर भाषी राज्यों में बहुसंख्यक द्विभाषिक-समुदाय द्वितीय भाषा के रूप में अन्य हिन्दी भाषा की की अपेक्षा हिन्दी का अधिक प्रयोग करता है है जो हिन्दी के सार्वदेशिक व्यवहार का प्रमाण है। भारत की राजभाषा हिन्दी है तथा पाकिस्तान की राज्यभाषा उर्दू है। इस कारण हिन्दी-उर्दू भारत एवं पाकिस्तान में संपर्क भाषा के रूप में व्यवहृत है।

विश्व के लगभग 93 देशों में हिन्दी का या तो जीवन के विविध क्षेत्रों में प्रयोग होता है अथवा उन देशों में हिन्दी के अध्ययन अध्यापन की सम्यक् व्यवस्था है। चीनी भाषा के बोलने वालों की संख्या हिन्दी भाषा से अधिक है किन्तु चीनी भाषा का प्रयोग क्षेत्र हिन्दी की अपेक्षा सीमित है। अंग्रेजी भाषा का प्रयोग क्षेत्र हिन्दी की अपेक्षा अधिक है किन्तु हिन्दी बोलने वालों की संख्या अंग्रेजी भाषियों से अधिक है।

विश्व के इन 93 देशों को हम तीन वर्गों में विभाजित कर सकते हैं -

(1) इस वर्ग के देशों में भारतीय मूल के अप्रवासी नागरिकों की आबादी देश की जनसंख्या में लगभग 40 प्रतिशत या उससे अधिक है। इन अधिकांश देशों में सरकारी एवं गैर-सरकारी प्राथमिक एवं माध्यमिक स्कूलों में हिन्दी का शिक्षण होता है। इन देशों के अधिकांश भारतीय मूल के अप्रवासी जीवन के विविध क्षेत्रों में हिन्दी का प्रयोग करते हैं। एवं अपनी सांस्कृतिक पहचान के प्रतीक के रूप में हिन्दी को ग्रहण करते हैं। इन देशों में निम्नलिखित देश उल्लेखनीय हैं - 1. मारीशस, 2. फिजी, 3. सूरीनाम 4. गयाना, 5. त्रिनिडाड एवं टुबेगो। त्रिनिडाड के अतिरिक्त सभी देशों में हिन्दी का व्यापक प्रयोग एवं व्यवहार होता है।

(2) इस वर्ग के देशों में ऐसे निवासी रहते हैं जो हिन्दी को विश्व भाषा के रूप में सीखते हैं, पढ़ते हैं तथा हिन्दी में लिखते हैं। इन देशों की विभिन्न शिक्षण संस्थाओं में प्रायः स्नातक / स्नातकोत्तर स्तर पर हिन्दी की शिक्षा का प्रबन्ध है। कुछ देशों के विश्वविद्यालयों

में हिन्दी में शोध कार्य करने तथा डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त करने की भी व्यवस्था है। इन देशों में निम्नलिखित देशों के नाम उल्लेखनीय हैं।

(क) अमेरिका महाद्वीप – 6. संयुक्त राज्य अमेरिका, 7. कनाडा, 8. मैक्सिको, 9. क्यूबा

(ख) यूरोप महाद्वीप – 10. रूस, 11. ब्रिटेन (इंग्लैण्ड), 12. जर्मनी, 13. फ्रांस, 14. बेल्जियम, 15. हालैण्ड (नीदरलैण्ड्स), 16. आस्ट्रिया, 17. स्विटजरलैण्ड, 18. डेनमार्क, 19. नार्वे, 20. स्वीडन, 21. फिनलैंड, 22. इटली, 23. पौलेंड, 24. चैक, 25. हंगरी, 26. रोमानिया, 27. बल्गारिया, 28. उक्रैन, 29. क्रोशिया

(ग) अफ्रीका महाद्वीप – 30. दक्षिण अफ्रीका, 31. री–यूनियन द्वीप

(घ) एशिया महाद्वीप – 32. पाकिस्तान, 33. बांग्लादेश, 34. श्रीलंका, 35. नेपाल, 36. भूटान, 37. म्यंमार (बर्मा), 38. चीन, 39. जापान, 40. दक्षिण कोरिया, 41. मंगोलिया, 42. उजबेकिस्तान, 43. ताजिकस्तान, 44. तुर्की, 45. थाइलैण्ड

(ङ) आस्ट्रेलिया महाद्वीप – 46. आस्ट्रेलिया

(3) इसका उल्लेख किया जा चुका है कि भारत की राजभाषा हिन्दी है तथा पाकिस्तान की राज्यभाषा उर्दू है। इस कारण हिन्दी–उर्दू भारत एवं पाकिस्तान में संपर्क भाषा के रूप में व्यवहृत है। भारत एवं पाकिस्तान के अलावा हिन्दी एवं उर्दू मातृभाषियों की बहुत बड़ी संख्या विश्व के लगभग 60 देशों में निवास करती हैं। इन देशों में भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश, भूटान, नेपाल आदि देशों के आप्रवासियों/अनिवासियों की विपुल आबादी रहती है। इन देशों की यह आबादी सम्पर्क–भाषा के रूप में 'हिन्दी–उर्दू' का प्रयोग करतीहै , हिन्दी में फिल्में देखती है, हिन्दी के गाने सुनती है तथा टेलीविजन पर हिन्दी के कार्यक्रम देखती है। इन देशों में संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, मैक्सिको, ब्रिटेन (इंग्लैण्ड), जर्मनी, फ्रांस, हालैण्ड (नीदरलैण्ड्स), दक्षिण अफ्रीका, दक्षिण कोरिया, उजबेकिस्तान, ताजिकस्तान, थाइलैण्ड, आस्ट्रेलिया आदि देशों के अलावा निम्नलिखित देशों के नाम उल्लेखनीय है :– 47. अफगानिस्तान, 48. अर्जेन्टीना, 49. अल्जेरिया, 50 इक्वेडोर, 51. इण्डोनेशिया, 52. इराक, 53. ईरान, 54. उगांडा, 55. ओमान, 56. कजाकिस्तान, 57. कतर, 58. कुवैत, 59. केन्या, 60. कोट डी इवोइरे, 61. ग्वाटेमाला, 62. जमाइका, 63. जम्बिया, 64. तंजानिंया, 65. नाइजीरिया, 66. निकारागुआ, 67. न्यूजीलैण्ड, 68. पनामा, 69. पुर्तगाल, 70 पेरू, 71. पैरागुवै, 72. फिलिपाइन्स, 73. बहरीन, 74. ब्राजील, 75. बुनेई, 76. मलेशिया, 77. मिस्र, 78 मेडागास्कर, 79. मोजाम्बिक, 80. मोरक्को, 81. मौरिटानिया, 82. यमन, 83 लीबिया, 84. लेबनान, 85. वेनेजुएला, 86. सऊदी अरब, 87. संयुक्त अरब अमीरात, 88. सिंगापुर, 89. सूडान 90. सेशेल्स, 91. स्पेन, 92. हांगकांग (चीन), 93. होंडूरास।

हिन्दी की फिल्मों, हिन्दी के गानों तथा टी0 वी0 कार्यक्रमों का प्रसार :-

हिन्दी की फिल्मों, गानों, टी0वी0 कार्यक्रमों ने हिन्दी को कितना लोकप्रिय बनाया है - इसका आकलन करना कठिन है। केन्द्रीय हिन्दी संस्थान में हिन्दी पढ़ने के लिए आने वाले 67 देशों के विदेशी छात्रों ने इसकी पुष्टि की कि हिन्दी फिल्मों को देखकर तथा हिन्दी फिल्मी गानों को सुनकर उन्हें हिन्दी सीखने में मदद मिली। लेखक ने स्वयं जिन देशों की यात्रा की तथा जितने विदेशी नागरिकों से बातचीत की, उनसे भी जो अनुभव हुआ उसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि हिन्दी की फिल्मों तथा हिन्दी गानों ने हिन्दी के प्रसार में अप्रतिम योगदान दिया है। सन् 1995 के बाद से टी0वी0 के चैनलों से प्रसारित कार्यक्रमों की लोकप्रियता भी बढ़ी है। इसका अनुमान इससे लगाया जा सकता है कि जिन सेटेलाईट चैनलों ने भारत में अपने कार्यक्रमों का आरम्भ केवल अंग्रेजी भाषा से किया था, उन्हें अपनी भाषा नीति में परिवर्तिन करना पड़ा है। अब स्टार प्लस, जी0टी0वी0, जी0 न्यूज, स्टार न्यूज, डिस्कवरी, नेशनल ज्योग्राफिक आदि टी0वी0 चैनल अपने कार्यक्रम हिन्दी में भी दे रहे हैं। दक्षिण पूर्व एशिया तथा खाड़ी के देशों के कितने दर्शक इन कार्यक्रमों को देखते हैं - यह अनुसन्धान का अच्छा विषय है।

सन् 1984 से सन् 1988 के बीच लेखक ने यूरोप के 18 देशों की यात्राएं कीं। यूरोप के देशों में कोलोन, बी0बी0सी0 ब्रिटिश रेडियो, सनराइज, सबरंग के हिन्दी सेवा कार्यक्रमों को हिन्दी प्रेमी बड़े चाव से सुनते हैं। यूरोप के देशों में ऐसी गायिकाएँ हैं जो हिन्दी फिल्मो के गाने गाती हैं तथा स्टेज शो करती हैं।

अपने विदेशी प्रवास की उक्त अवधि में जो फिल्मी गाने विभिन्न यूरोपीय देशों मे सर्वाधिक लोकप्रिय थे, उनके नाम इस प्रकार है - 1. आवारा हूँ, 2. मेरा जूता है जापानी, 3. सर पर टोपी लाल, हाथ में रेशम का रूमाल, हो तेरा क्या कहना, 4. जब से बलम घर आए जियरा मचल मचल जाए, 5. आई लव यू, 6. मुड़-मुड़ के, 7. ईचक दाना, बीचक दाना, दाने ऊपर दाना, छज्जे ऊपर लड़की नाचे, लड़का है दीवाना, 8. मेघा छाये आधी रात, निंदिया हो गई बैरन, 9. मौसम है आशिकाना, ऐसे में ऐ दिल कहीं से उनको ढूँढ लाना 10. दम मारो दम, मिट जाये गम, 11. सुहाना सफर है, 12 तेरे बिना जिन्दगी से कोई शिकवा तो नहीं, 13 बोल रे पपीहरा, 14 चन्दो ओ चन्दा, 15 यादों की बारात निकली है आज दिल के द्वारे, 16. जिन्दगी एक सफर है सुहाना, यहां कल क्या हो, किसने जाना, 17. न कोई उमंग है, न कोई तरंग है, मेरी जिन्दगी है क्या? एक कटी पतंग है, 18. बहारो! मेरा जीवन भी संवारो, 19. आ जा रे परदेसी, मैं तो खड़ी इस पार।

संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषाओं की तुलना में हिन्दी मातृभाषियों की संख्या :-

सन् 1998 के बाद विश्व स्तर पर हिन्दी की संख्या के आंकड़ों में परिवर्तन आ गया।

भाषिक आंकड़ों की दृष्टि से सर्वाधिक प्रामाणिक ग्रन्थों के आधार पर संयुक्त राष्ट्र संघ की 6 आधिकारिक भाषाओं की तुलना में हिन्दी के मातृभाषा वक्ताओं की संख्या निम्न तालिका में प्रस्तुत है (मिलियन में)

भाषा	स्रोत (1)	स्रोत (2)	स्रोत(3)	स्रोत (4)
चीनी मंदारिन	836	800	874	874
हिन्दी	333	550	366	366
स्पेनिश	332	400	322-358	322-358
अंग्रेजी	322	400	341	341
अरबी	186	200	-	-
रूसी	170	170	167	167
फ्रांसीसी	72	90	77	77

(1) Encarata Encyclopedia – Article of Dr. Bernard Comrie (1998)

(2) D. Dalby : The Linguasphere Register of the World's Languages and Speech Communities, Cardiff, Linguasphere Press (1999)

(3) Ethnologue, Volume 1. Languages of the World : Edited by Barbara F. Grimes, 14th Edition, SIL International (2000)(4) The World Almanac and Book of Facts, World Almanac Education Group, Inc (2003)

एनकार्टा एन्साइक्लोपीडिया में भाषा के बोलने वालों की संख्या की दृष्टि से जो संख्या है वह इस प्रकार है : (1) चीनी 836 मिलियन (83 करोड़ 60 लाख), (2) हिन्दी 333 मिलियन (33 करोड़ 30 लाख), (3) स्पेनिश 332 मिलियन (33 करोड़ 20 लाख), (4) अंग्रेजी 332 मिलियन (32 करोड़ 20 लाख), (5) अरबी, 186 मिलियन (18 करोड़ 60 लाख), (6) रूसी 170 मिलियनल (17 करोड़) (7) फ्रांसीसी 72 मिलियन (7 करोड़ 20 लाख)

(2) दूसरे स्रोत के ग्रन्थ में संख्या इस प्रकार है –

(1) चीनी 800 मिलियन (80 करोड़), (2) हिन्दी 550 मिलियन (55 करोड़)

(3) स्पेनिश 400 मिलियन (40 करोड़), (4) अंग्रेजी 400 मिलियन (40 करोड़)

(5) अरबी 200 मिलियन (20 करोड़), (6) रूसी 170 मिलियन (17 करोड़)

(7) फ्रेंच 90 मिलियन (9 करोड़ 20 लाख)

(3) तीन एवं चार स्रोतों के ग्रन्थ के आंकड़े एक जैसे हैं। इसका कारण यह है कि द वर्ल्ड अल्मानेक एण्ड बुक ऑफ फैक्ट्स (The World Almanac and Book of Facts)) के आंकड़ों का आधार एथनोलॉग ही है।

इन दोनों ग्रन्थों में प्रतिपादित संख्या इस प्रकार है :

1. चीनी 874 मिलियन (87 करोड़ 40 लाख), 2. हिन्दी 366 मिलियन (36 करोड़ 60 लाख, 3. स्पेनिश 322-358 मिलियन (32 करोड़ 20 लाख से 35 करोड़ 80 लाख), 4. अंग्रेजी 341 मिलियन (34 करोड़ 10 लाख)

इन ग्रन्थों में अरबी को रिक्त दिखाया गया है। इसका कारण इन ग्रन्थों में यह प्रतिपादित है कि अरबी एक क्लासिकल लैंग्वेज है तथा इन्होने भाषाओं के जो आँकड़े दिये हैं, वे मातृभाषियों के हैं, द्वितीयभाषा वक्ताओं (सैकेन्ड लैंग्वेज स्पीकर्स) के नहीं। इस कारण इन्होंने टेबिल में अरबी लैंग्वेज को नहीं रखा है।

रूसी भाषियों की संख्या 167 मिलियन (16 करोड़ 70 लाख) तथा फ्रेंच भाषियों की संख्या 77 मिलियन (7 करोड़ 70 लाख) है।

मातृभाषियों की संख्या का अन्तर :-

तालिका का अध्ययन करने से यह स्पष्ट है कि इन ग्रन्थों में विभिन्न भाषाओं के मातृभाषियों की संख्या के आँकड़ों में एकरूपता/समानता नहीं है। तालिका में स्रोत-2 के ग्रन्थ में हिन्दी भाषियों की संख्या है - 550 मिलियन (55 करोड़), किन्तु तीन एवं चार स्रोत के ग्रन्थों में हिन्दी भाषियों की संख्या प्रतिपादित है - 366 मिलियन (36 करोड़ 60 लाख)। जब वैज्ञानिक ढंग से आँकड़े इकट्ठे हो रहे हैं तथा मातृ भाषियों की दृष्टि से आँकड़े प्रस्तुत किये जा रहे हैं तो यह अन्तराल क्यों है? स्रोत 3 एवं 4 के ग्रन्थों का ध्यान से अध्ययन करने के बाद आंकड़ों के अन्तर का रहस्य उद्घाटित हो जाता है। इन ग्रन्थों में हिन्दी के क्षेत्रगत भेदों एवं शैलीगत भेदों को अलग-अलग भाषाओं के रूप में प्रदर्शित किया गया है। हिन्दी भाषा क्षेत्र के अन्तर्गत बोले जाने वाले इन क्षेत्रगत एवं शैलीगत भेदों के मातृभाषाओं की जो संख्याएँ प्रतिपादित हैं उन संख्याओं को 366 मिलियन (36 करोड़ 60 लाख) संख्या में जोड़ने पर हिन्दी के मातृभाषियों की संख्या पहुँच जाती है - 553 मिलियन (55 करोड़ 30 लाख) स्रोत-2 में हिन्दी भाषियों की संख्या का योग है - 550 मिलियन (55 करोड़)। स्रोत-3 एवं स्रोत-4 के ग्रन्थों में हिन्दी भाषा के जिन 11 क्षेत्रगत (Regional) तथा शैलीगत (Stylistic) भेदों के मातृभाषियों की संख्या को अलग-अलग प्रदर्शित किया गया है, उनकी संख्याओं का योग कर देने पर इन दोनों ग्रन्थों में हिन्दी

भाषियों की संख्या हो जाती है – 553 मिलियन (55 करोड़ 30 लाख)।

संसार में ऐसा कोई भाषा क्षेत्र नहीं होता, जिसमें क्षेत्रगत भेद नहीं होते। कहावत है – चार कोस पर बदले पानी, आठ कोस पर बानी। चीनी भाषा के बोलने वालों की संख्या 700–800 मिलियन (70 करोड़ से 80 करोड़) है तथा उसका भाषा क्षेत्र हिन्दी भाषा क्षेत्र की अपेक्षा बहुत विस्तृत है। चीनी भाषी क्षेत्र में जो भाषिक रूप बोले जाते हैं वे सभी परस्पर बोधगम्य नहीं है। जब पाश्चात्य भाषा वैज्ञानिक चीनी भाषा की विवेचना करते हैं तो किसी प्रकार का विवाद पैदा नहीं करते किन्तु स्रोत–3 एवं 4 जैसे ग्रन्थों के विद्वान् जब हिन्दी भाषा की विवेचना करते हैं तो हिन्दी भाषा क्षेत्र के अन्तर्गत बोले जाने वाले हिन्दी भाषा के उपभाषा रूपों को भाषा का दर्जा दे देते हैं। हिन्दी भाषा क्षेत्र के अर्न्गत भारत के निम्नलिखित राज्य/केन्द्र शासित प्रदेश समाहित हैं – 1. उत्तर प्रदेश, 2. उत्तराखंड, 3. बिहार, 4. झारखण्ड, 5. मध्य प्रदेश, 6. छत्तीसगढ़, 7. राजस्थान, 8. हिमाचल प्रदेश, 9. हरियाणा, 10. दिल्ली, 11. चण्डीगढ़

हिन्दी भाषा का क्षेत्र बहुत व्यापक है। हिन्दी भाषा क्षेत्र में ऐसी बहुत सी उपभाषाएं हैं जिनमें पारस्पारिक बोधगम्यता का प्रतिशत बहुत कम है, किन्तु ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से सम्पूर्ण भाषा क्षेत्र एक भाषिक इकाई है तथा इस भाषा–भाषी क्षेत्र के बहुमत भाषा–भाषी अपने–अपने क्षेत्रगत भेदों को हिन्दी भाषा के रूप में मानते एवं स्वीकारते आए हैं। भारत के संविधान की दृष्टि से यही स्थिति है। सन् 1997 में भारत सरकार के सैन्सस ऑफ इण्डिया द्वारा प्रकाशित ग्रन्थ में भी यही स्थिति है।

'खड़ी बोली' हिन्दी भाषा क्षेत्र का उसी प्रकार एक भेद है, जिस प्रकार हिन्दी भाषा के अन्य बहुत से क्षेत्रगत भेद हैं। प्रत्येक भाषा क्षेत्र में अनेक क्षेत्रगत, वर्गगत एवं शैलीगत भिन्नताएँ होती है। प्रत्येक भाषा क्षेत्र में किसी क्षेत्र विशेष के भाषिक रूप के सभी क्षेत्रों के पढ़े–लिखे व्यक्ति औपचारिक अवसरों पर प्रयोग करते हैं। पूरे भाषा क्षेत्र का मानक रूप भाषा क्षेत्र में इसका व्यवहार होने तथा इसके प्रकार्यात्मिक प्रचार–प्रसार के कारण विकसित भाषा का मानक रूप क्षेत्र के समस्त भाषिक रूपों के बीच संपर्क सेतु का काम करता है तथा कभी–कभी इसी मानक भाषा रूप के आधार पर उस भाषा की पहचान की जाती है। प्रत्येक देश की एक राजधानी होती है तथा विदेशों में किसी देश की राजधानी के नाम से प्रायः देश का बोध होता है, किन्तु सहज रूप से समझ में आने वाली बात है कि राजधानी ही देश नहीं होता।

जिस प्रकार भारत अपने 28 राज्यों एवं 07 केन्द्र शासित प्रदेशों से मिलकर भारत देश है, उसी प्रकार भारत के जिन राज्यों एवं शासित प्रदेशों को मिलाकर हिन्दी भाषा क्षेत्र है, उस हिन्दी भाषा–क्षेत्र के अन्तर्गत जितने भाषिक रूप बोले जाते हैं उनकी समष्टि का नाम हिन्दी भाषा है। हिन्दी भाषा क्षेत्र के प्रत्येक भाग में व्यक्ति स्थानीय स्तर पर क्षेत्रीय

भाषा रूप में बात करता है। औपचारिक अवसरों पर तथा अन्तर-क्षेत्रीय, राष्ट्रीय एवं सार्वदेशिक स्तरों पर भाषा के मानक रूप अथवा व्यावहारिक हिन्दी का प्रयोग होता है। आप विचार करें कि उत्तर प्रदेश हिन्दी भाषी राज्य है अथवा खड़ी बोली, ब्रजभाषा, कन्नौजी, अवधी, बुन्देली आदि भाषाओं का राज्य है। इसी प्रकार मध्य प्रदेश हिन्दी भाषी राज्य है अथवा बुन्देली, बघेली, मालवी, निमाड़ी आदि भाषाओं का राज्य है। जब संयुक्त राज्य अमेरिका की बात करते हैं तब संयुक्त राज्य अमेरिका के अन्तर्गत जितने राज्य हैं, उन सबकी समष्टि का नाम ही तो संयुक्त राज्य अमेरिका है। विदेश सेवा में कार्यरत अधिकारी जानते हैं कि कभी देश के नाम से तथा कभी उस देश की राजधानी के नाम से देश की चर्चा होती है। वे ये भी जानते हैं कि देश की राजधानी के नाम से देश की चर्चा भले ही होती है, मगर राजधानी ही देश नहीं होता। इसी प्रकार किसी भाषा के मानक रूप के आधार पर उस भाषा की पहचान की जाती है। मगर मानक भाषा, भाषा का एक रूप होता है, मानक भाषा ही भाषा नहीं होती। इसी प्रकार खड़ी बोली के आधार पर मानक हिन्दी का विकास अवश्य हुआ हैं किन्तु खड़ी बोली ही हिन्दी नहीं है। तत्वतः हिन्दी भाषा क्षेत्र के अन्तर्गत जितने भाषिक रूप बोले जाते हैं उन सबकी समष्टि का नाम हिन्दी है। हिन्दी को उसके अपने ही घर में तोड़ने का षड़यंत्र अब विफल हो गया है क्योंकि 1991 की भारतीय जनगणना के अंतर्गत जो भारतीय भाषाओं के विश्लेषण का ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है उसमें मातृभाषा के रूप में हिन्दी को स्वीकार करने वालों की संख्या का प्रतिशत उत्तर प्रदेश (उत्तराखंड राज्य सहित) में 90.11, बिहार (झारखण्ड राज्य समेत) में 80.86, मध्य प्रदेश (छत्तीसगढ़ राज्य सहित) में 85.55, राजस्थान में 89.56, हिमाचल प्रदेश में 88.88, हरियाणा में 91.00, दिल्ली में 81.64, तथा चण्डीगढ़ में 61.06 है।

हिन्दी एक विशाल भाषा है। विशाल क्षेत्र की भाषा है। अब निर्विवाद है कि चीनी भाषा के बाद हिन्दी संसार में दूसरे नम्बर की सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषा है।

यदि हम सम्पूर्ण प्रयोक्ताओं की संख्या की दृष्टि से बात करें जिसमें मातृभाषा वक्ता (First Language Speakers) तथा द्वितीयभाषा वक्ता (Second Language Speakers) दोनों हों तो हिन्दी भाषियों की संख्या लगभग एक हजार मिलियन (सौ करोड़) है। दूसरे स्रोत के ग्रन्थ (The Linguasphere Register of the World's Languages and Speech Communities) में इस दृष्टि से हिन्दी भाषियों की संख्या 960 मिलियन मानी गई है। जो प्रमाणिक तथ्य प्रस्तुत हैं उनसे यह निर्विवाद है कि हिन्दी को संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा के रूप में मान्यता मिलनी चाहिए। ●

Emerson As Hero and His Hero-Worship : A Brief Note

Ms. Lalita Singh

Part Time Lecturer, Department of English

F. O. Matthiessen, Perry Miller, Sherman Paul, Bliss Perry, Ralph Rusk, Floyd Stovall, O. W. Holmes and others regard Ralph Waldo Emerson an American scholar in the real sense. Most of his lectures are still admired by the scholars all over the world as they have stood the test of time and place. As a thinker he accepted the lofty thoughts of his predecessors and yet remained original. He felt no shame in accepting the influence of various Greek, Roman, French, German and British writers as imitation is no crime to him. The Vedads, the Puranas, The Gita and other Indian books inspired him to lead a simple life as a yogi. As every generation has its own share for the betterment of society. As a scholar, he remains 'the whole man' and not a mere preacher. As the material pursuits of life had no attraction for him. He meditated like Buddha and delivered lectures on Beauty, Heroism, Experience, Love, Compensntion. Self Reliance, The Over-Soul, etc. and accepted the dignity of man as man. He is always thoughtful, wise and prudent and should not be run down as a mere intellectual dealing with abstract and vague topics. Like Wordsworth, Thoreau, Arnold etc. he felt communion with Nature and felt deligthted in the accumulation of facts.

O. W. Holmes regarded Emerson an active soul who could analyse the mystery of 'intellect' and 'spirit' of man. He felt interested in the life and works of this noble writer and hence wrote his biography to highlight the various aspects of his personality and words. Nobody has impartially analysed this biography of Emerson so far and hence an effort is being made to critically analyse the approach of O. W. Holmes towards Emerson. Does he advertise the principles of Emerson? Does he reach the depth of his thoughts? Is Emerson really interested in learning something from Plato, Montaigne, Shakespeare, Milton, Swendenborg, Thoreau etc.? How does he feel indebted to the ancient Indian classics? What is the net result of his moments of solitude? How did he assert the need of Beauty, Truth, Virtue, Intellect and other noble qualities for a decent life? Is he really a man of action? Of course, Emerson, like Thoreau, practised whatever he prescribed for others.

This learned scholar had a lot of thought to share with the reading public and yet had no sense of pride about his lectures, essays, poems and biographical sketches (Known as Representative Men). The aim of this brief note is to establish the reputation of Emerson's biography writeen by O. W. Holmes. Secondly, an effort is to be made to evaluate Emerson's major biographical essays. As a scholar, Emerson had the courage to speak freely at every place and it was due to his freedom from fear.

प्रेम की परिभाषा

डॉ. विकास शर्मा
अध्यक्ष, अंग्रजी विभाग

जब मैं कहता क्या तभी प्रेम की परिभाषा थी,
तुम्हें कभी भी प्रेम-कल्पतरू नहीं दिखा था।
प्रेम कथा आँखों से होकर रही पनपती,
वाणी का संवाद वहाँ पर कहाँ लिखा था।।
वाणी अक्सर मौन रहा करती है,
आँखों ही आँखों में प्यार हुआ करता है।
दिलो-दिमाग पर छा जाता है कोई,
दिल पर भी उसका अधिकार हुआ करता है।।
हो सकता है मैंने गलत स्वप्न देखे हों,
तुमको भी क्या स्वप्न नहीं आये थे मेरे।
तुमने याद किया मुझको या नहीं किया हो,
मैं पूजा करता था तेरी सांझ-सवेरे।।

मेरी प्रणय साधना में विश्राम नहीं है,
तुम बिन मुझको इस जग में आराम नहीं है।
क्षणभर को मेरे मन-मन्दिर में आ जाओ,
चारों ओर तुम्ही हो, इसमें राम नहीं है।।
किन्हीं क्षणों में जब तुम मुझको याद करोगी,
तब तुम मुझसे मिलने की फरियाद करोगी।
और फिर मेरी मजबूरी आड़े आवेंगी,
जाने किसका दिल फिर तुम आबाद करोगी।।
मैं भी खुश हूँ, कैसे कोई मान सकेगा,
मेरे गम की पीड़ा किन्तु न यह जग जान सकेगा।
अपने गम को पीकर जिसने खुशियाँ बांटी,
दीवाना ही दीवाने को पहचान सकेगा।।

देश अब कौन चलायेगा?

यदुनाथ 'यदु'
प्रयोगशाला सहायक, रसायन विज्ञान विभाग

देश की मिट्टी, जिसको प्यारी,
सींचा जिसने, क्यारी-क्यारी
उसका है यह देश, भाव जब
यह जग जायेगा,
देश अब वही, चलायेगा।
खलिहानों खेतों में बहता,
जिसका खून पसीना।
जिसके पूत खड़े सीमा पर,
ताने अपना सीना।
मेहनतकश मिलकर के जब,
अपना परचम लहरायेगा।
देश अब वही चलायेगा।।
खानों और खदानों वाले।
पड़ते हाथों में, जिनके छाले।।
मेहनत जिनकी, शंख-अजान
मानवता जिनकी, पहचान
जाति-धर्म का भेद भूलकर
इन्कलाब जो गायेगा।
देश अब वही चलायेगा।
मुक्त जो होगा, भय के बन्धन से।
होगा द्रवित, करूण क्रन्दन से।।
समता जिसको, भाती हो।
मानवता जिसकी, जाति हो।।
रंच मात्र हुंकार, के जिसके,
पाप महल ढह जायेगा।
देश अब वही चलायेगा।

राह भटकती ट्रेनें

डॉ. (श्रीमती) उर्मिला शर्मा
रीडर, हिन्दी विभाग

भरतपुर के स्टेशन पर खड़ी संपर्क क्रान्ति एक्सप्रेस को
देख उसकी सखी ट्रेन सकपकायी।
आज कैसे आना हुआ बहन इस बार।
कैसे याद आयी बहन के द्वार आने की बात।
न रहा गया पूछी एक बात।
संपर्क क्रान्ति अनपेक्षित प्रश्न से हतप्रभ थी।
उसने अपनी मदहोश खुमारी में डूबी आँखो को खोलकर कहा।
मैं यहाँ कैसे आयी? फिर जरा संभल कर बोली
बहन से मिलने का चाव खींच लाया
गफ़लत की पटरी पर सरपट दौड़ आयी
अनपेक्षित राहों पर आकाओं के इशारों पर चली आयी
बहन तुम्हे शायद नहीं मालूम तुम बहुत भोली हो
व्यवस्था के इशारों पर दौड़ना हमारी नियति है
बेलगाम राजनीतिज्ञों के इशारों पर रूकना हमारी प्रगति है।
इतना ही नहीं पथ-विचलन आज के जमाने की सुगति है।
अतिक्रमण आज के युग की सबसे बड़ी फितरत है।
स्वतन्त्र भारत में हर कोई स्वतन्त्र है।
जिधर चाहे जाये ये उसका हक है।
उसके इन शब्दों को सुनकर मंत्री जी की तन्द्रा टूटी
वह अपनी चिर परिचित अन्दाज में बोले
ऐ संपर्क क्रान्ति एक्सप्रेस हमका अपने भटकन का कारण बताबल वा।
संपर्क क्रान्ति एक्सप्रेस पहले तो घबरायी, सकुचाई, लजाई
फिर साहस बटोर कर बोली,
माननीय मंत्री जी इस स्वतन्त्र भारत मा।
हमको भी तैतीस फीसदी भटकन का हक वा। ●

सुधियों के झरोखे से

यदुनाथ 'यदु'

स्व0 श्री श्याम बिहारी लाल गर्ग
पूर्व सचिव - प्रबन्ध समिति
डी0ए0वी0 (पी0जी0) कॉलिज, बुलन्दशहर

स्मृतियों के दर्पन में
तेरी छवि आती जाती है।
कैसे मन की व्यथा लिखूँ
जाती न वहाँ कोई पाती है।

विस्मृत कभी नहीं होगा वह,
निश्छल सस्मित प्यारी मुस्कान।
मन के पन्नों पर चित्रित है,
औदार्य भरा तेरा औदान।

नियति की नश्वरता के आगे,
किसी का कोई बस न चलता।
जो आया है वह जायेगा,
ध्रुव सत्य यही, वह सबको छलता।

नमन 'यदु' करता है उनको,
जो पर उपकार में, ही जीते हैं।
पर पीड़ा के लिए, सदा वे,
अपना घाव स्वयं सीते हैं।

वर्ष 2006-2007 का शारीरिक शिक्षा विभाग का वार्षिक प्रतिवेदन

- श्यौराज सिंह
अध्यक्ष, शारीरिक शिक्षा विभाग

वर्ष 2006-2007 में महाविद्यालय के क्रीड़ा विभाग में सभी खेलों का आयोजन सुचारू रूप से चला एवं बास्केटबाल, हैन्डबॉल, बालीवाल, कबड्डी, खो-खो, एथलेटिक्स, टेबिल-टेनिस, बैडमिन्टन, क्रिकेट आदि खेलों का अभ्यास सम्पूर्ण वर्ष सुचारू रूप से चला और महाविद्यालय की सभी टीमों ने अच्छे खेल का प्रदर्शन करते हुए चौ0 चरण सिंह विश्व विद्यालय अन्तर महाविद्यालय टूर्नामेन्टों में भाग लिया। वर्ष 2006-2007 की विशेष उपलब्धियाँ निम्नलिखित हैं :-

1. बास्केटबॉल (पुरूष) - वर्ष 2006-07 का चौ0 चरण सिंह विश्व विद्यालय अन्तर महाविद्यालय बास्केटबॉल टूर्नामेन्ट हमारे महाविद्यालय द्वारा आयोजित किया गया जिसमें हमारे महाविद्यालय की बास्केटबॉल टीम विवि चैंपियन बनी और हमारे महाविद्यालय के तीन खिलाड़ी- श्री पवन कुमार सिंह एम.ए. प्रथम वर्ष (इतिहास), अरूण कुमार बी.एस.सी. द्वितीय वर्ष एवं अनन्त कुमार, बी.एस.सी. तृतीय वर्ष का चयन विवि टीम में हुआ। इन तीनों खिलाड़ियों ने अन्तर विवि टूर्नामेन्ट में चौ0 चरण सिंह विवि का प्रतिनिधित्व किया।

2. कबड्डी (पुरूष) - इस वर्ष चौ0 चरण सिंह विवि अन्तर महाविद्यालय कबड्डी टूर्नामेन्ट एम.एम.एच. कॉलिज, गाजियाबाद द्वारा आयोजित किया गया जिसमें महाविद्यालय की कबड्डी टीम ने अच्छा प्रदर्शन करते हुए प्री क्वाटर फाइनल तक प्रवेश किया एवं महाविद्यालय के दो खिलाड़ियों श्री प्रशान्त कुमार बी.ए. द्वितीय एवं सन्दीप तेवतिया, बी.ए. प्रथम वर्ष का चयन चौ0 चरण सिंह विश्वविद्यालय कबड्डी टीम में हुआ।

3. बॉलीबॉल (पुरूष) - इस वर्ष चौ0 चरण सिंह विवि0 अन्तर महाविद्यालय बालीबॉल टूर्नामेन्ट गोचर महाविद्यालय, रामपुर मनिहारन सहारनपुर द्वारा आयोजित किया गया जिसमें हमारे महाविद्यालय की बॉलीबॉल टीम ने अच्छा प्रदर्शन करते हुए सेमी फाइनल में प्रवेश किया एवं हमारे महाविद्यालय के एक खिलाड़ी श्री अवनीश कुमार (बी.ए. द्वितीय वर्ष) का चयन चौ0 च0वि0वि0 बालीबॉल टीम में हुआ। अवनीश कुमार बी.ए. तृतीय वर्ष ने अन्तर विवि बॉलीबाल टूर्नामेन्ट में चौ0 च0वि0वि0 का प्रतिनिधित्व किया।

4. हैण्डबॉल (पुरूष) - चौ0 चरण सिंह विवि अन्तर महाविद्यालय (पुरूष) हैण्डबॉल टूर्नामेन्ट इस वर्ष एस.डी. कॉलिज, गाजियाबाद द्वारा आयोजित किया गया जिसमें हमारे महाविद्यालय की हैण्डबॉल टीम ने अच्छा प्रदर्शन किया और हमारे महाविद्यालय की हैण्डबॉल टीम विश्वविद्यालय की उपविजेता घोषित हुई एवं हमारे महाविद्यालय के तीन खिलाड़ियों - श्री लोकेन्द्र सिंह बी0एस0सी0 तृतीय वर्ष, विनीत कुमार बी0एस0सी द्वितीय वर्ष और प्रमोद कुमार बी0एस0सी0 प्रथम वर्ष का चयन चौ0 चरण सिंह विवि हैण्डबॉल टीम में हुआ

और उपरोक्त तीनों खिलाड़ियों ने अन्तर विवि हैण्डबॉल टूर्नामेन्ट में चौ0 चरण सिंह विवि का प्रतिनिधित्व किया।

5. हैण्डबॉल (महिला) – इस वर्ष चौ0 चरण सिंह विवि अन्तर महाविद्यालय हैण्डबॉल (महिला) टूर्नामेन्ट का सफल आयोजन हमारे महाविद्यालय द्वारा किया गया एवं महाविद्यालय की दो खिलाड़ियों कु0 निशा चौधरी बीए. प्रथम वर्ष, कु0 प्रियंका चौधरी बीए. प्रथम का चयन चौ0 चरण सिंह विवि (महिला) हैण्डबॉल टीम में हुआ। उपरोक्त दोनों खिलाड़ियों ने अन्तर विवि हैण्डबॉल टूर्नामेन्ट में चौ0 चरण सिंह विवि टीम का प्रतिनिधित्व किया।

6. ऐथलेटिक्स (पुरूष) – इस वर्ष चौ0 चरण सिंह विवि अन्तर महाविद्यालय, ऐथलेटिक्स टूर्नामेन्ट मेरठ कॉलिज, मेरठ द्वारा आयोजित किया गया जिसमें हमारे महाविद्यालय के खिलाड़ी– करूणाकर मौर्य बीए. प्रथम वर्ष ने ऊँची कूद में प्रथम एवं लम्बी कूद में द्वितीय स्थान प्राप्त किया।

7. बॉलीबॉल (महिला) – इस वर्ष चौ0 च0 वि0 वि0 बॉलीवाल टूर्नामेन्ट, मुन्नालाल महिला महाविद्यालय, सहारनपुर द्वारा आयोजित किया गया, जिसमें हमारे महाविद्यालय की बॉलीवाल खिलाड़ी कु0 प्रियंका चौधरी बी0ए0 प्रथम वर्ष का चयन चौ0 च0 वि0वि0 महिला बॉलीवाल टीम में हुआ और कु0 प्रियंका चौधरी बी0 एम0 प्रथम वर्ष ने अन्तर वि0 वि0 महिला बॉलीवाल टूर्नामेन्ट में चौ0 च0 चि0 वि0 का प्रतिनिधित्व किया।

8. खो–खो (पुरूष) – इस वर्ष चौ0 चरण वि0 वि0 अन्तर महाविद्यालय 'खो–खो' पुरूष टूर्नामेन्ट अमर सिंह कॉलिज, लखावटी द्वारा आयोजित किया गया। जिसमें हमारे महाविद्यालय के खिलाडी श्री राजेश कुमार शर्मा का चयन चौ0 च0 सिंह वि0 वि0 खो–खो पुरूष टीम में हुआ और इन्होने अन्तर वि0 वि0 'खो–खो' पुरूष टूर्नामेन्ट में चौ0 च0 वि0 वि0 का प्रतिनिधित्व किया।

9. शूटिंग (पुरूष) – इस वर्ष चौ0 च0 वि0 वि0 अन्तर महाविद्यालय शूटिंग प्रतियोगिता जे0 वी0 कॉलिज, बड़ौत द्वारा आयोजित की गई जिसमें हमारे महाविद्यालय के खिलाड़ी श्री कवित कुमार, बी0ए0 प्रथम वर्ष ने तृतीय स्थान प्राप्त किया।

इस प्रकार टीमों का प्रदर्शन सराहनीय रहा।

महाविद्यालय की राष्ट्रीय सेवा योजना इकाई–1 व इकाई–2 की शैक्षणिक सत्र 2006–07 की गतिविधियों की एक झलक

पल्स पोलियो अभियान का नेतृत्व करते
कार्यक्रम अधिकारी डॉ0 राजेश गर्ग

पल्स पोलियो रैली का नेतृत्व करते
कार्यक्रम अधिकारी श्री राजीव सिरोही

राष्ट्रीय सेवा योजना के शिविर में ग्रामीणों को
चिकित्सीय परामर्श देते डॉ0 नकुल उपाध्याय, पास में बैठे हैं
कार्यक्रम अधिकारी डॉ0 राजेश गर्ग

10 दिवसीय शिविर के समापन समारोह
चाँदपुर (ग्राम) में ग्रुप फोटो

ग्रामीणों को साक्षर बनाते
राष्ट्रीय सेवा योजना के स्वयं सेवक

रा0से0यो0 की इकाई नं0–01 की छात्राओं
द्वारा नाटक मंचन ग्राम चाँदपुर

1PL of 2/36 कम्पनी एन0सी0सी0

डी0ए0वी0 स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बुलन्दशहर

वार्षिक प्रतिवेदन

ले0 (डॉ0) गौतमवीर

राष्ट्रीय कैडेट कोर युवाओं में राष्ट्रीय सुरक्षा एवं अखण्डता की चेतना का विकास करती है एवं उन्हें राष्ट्र के इस लक्ष्य को प्राप्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने के लिए तैयार करती है। महाविद्यालय में 36 यू0 पी0 बटालियन बुलन्दशहर जिसके कमान अधिकारी लैफटिडेन्ट कर्नल के0 एस0 नगी हैं की राष्ट्रीय एक प्लाटून महाविद्यालय को प्राप्त है। महाविद्यालय में राष्ट्रीय कैडेट कोर 2004 में छात्रहित एवं राष्ट्रहित की भावना से प्रेरित होकर पुनः प्रारम्भ की गई। महाविद्यालय में राष्ट्रीय कैडिट कोर अधिकारी के रूप में डॉ0 गौतमवीर को चयनित किया गया। भारत सरकार द्वारा संचालित विभिन्न राष्ट्रीय कार्यक्रमों में भागीदारी देते हुए अक्टूबर 2006 में राष्ट्रीय कैडेट कोर के अधिकारी के रूप में मैने कमीशन प्राप्त किया, साथ ही नेशनल सिविल डिफेन्स कॉलिज, नागपुर से 'नागरिक सुरक्षा' प्रमाण पत्र प्राप्त किया। ऑफिसर ट्रेनिंग अकादमी कामठी में 'फायरिंग कम्पीटिशन' में प्रथम स्थान प्राप्त किया।

महाविद्यालय की कम्पनी के अनेक कैडेटों का चयन पुलिस एवं सेना विभाग के साथ अन्य अनेकों स्थानों पर हुआ , जिससे महाविद्यालय के इन कैडेटों ने उत्कृष्ठ उपलब्धियां अर्जित करके महाविद्यालय को गौरवान्वित किया है।

महाविद्यालय के दो कैडेट सीनियर अन्डर ऑफिसरस कपिल चौधरी एवं कैडिट ओमिन्द्र सिंह ने 26 जनवरी 2007 को गणतन्त्र दिवस परेड नई दिल्ली में भाग लिया। 15 कैडेटों ने 26 जनवरी को उत्तर प्रदेश पुलिस जनपद बुलन्दशहर में बेस्ट ड्रिल प्रशस्ति पत्र एवं पुरस्कार प्राप्त किये जिसकी कमान अण्डर ऑफिसर अनिरूद्ध कुमार ने सम्भाली।

फरवरी 2007 में 'संयुक्त वार्षिक प्रशिक्षण शिविर' में हमारे कैडिट्स ने विविध क्षेत्रीय उपलब्धियां अर्जित करते हुए शिविर के कदाचित् सभी पदों पर हमारे कैडिट्स को नियुक्त किया गया। महाविद्यालय के कैडिट्स और अनेक शिविरों में भी विशेष उपलब्धियां हासिल कर चुके हैं। जैसे –पर्वतारोहण शिविर, पैरा ट्रेनिंग शिविर, आर्मी नेशनल इन्टीग्रेशन शिविर, अटैचमैंट शिविर। कैडिट्स वर्ष भर अनेक सामाजिक जागृति अभियानों का आयोजन करते रहे व अनेक जनजागरूकता रैलियों का आयोजन किया। जैसे – सर्व शिक्षा अभियान, पल्स पोलियो अभियान, वृक्षारोपण अभियान, नागरिक सुरक्षा अभियान, एड्स जागरूकता अभियान आदि का सफल आयोजन किया।

वर्ष 2007 में प्रथम वर्ष प्रशिक्षण में लास कारपोल कार्तिक एवं द्वितीय वर्ष में सारजेन्ट मनीष प्रताप सिंह ने विशेष योगदान प्राप्त किया। अण्डर ऑफिसर अनिरूद्ध कुमार ने 'रक्तदान शिविर' के आयोजन में जिला चिकित्सालय, बुलन्दशहर को अनेकों बार रक्त उपलब्ध कराया। रक्तदान शिविर में कैडिट जितेन्द्र कुमार, रामबाबू, कुलदीप कुमार, मनोज कुमार, कारपोल कौशल कुमार, रोहित कुमार अवतार आदि की अग्रणीय भूमिका महाविद्यालय कम्पनी के लिए गौरवपूर्ण हैं। वर्ष 2006-07 में 10 कैडिट्स 'बी' परीक्षा एवं 17 कैडिट्स 'सी' प्रमाणपत्र की परीक्षा में सम्मिलित हुए। वर्तमान में महाविद्यालय के प्राचार्य डा0 सी0 पी0 गुप्त ने छात्राओं के सेना के प्रति आकर्षण को देखते हुए महाविद्यालय में छात्राओं को एन0 सी0 सी0 उपलब्ध करायी। इससे छात्राएं कैडिट्स भी समान रूप से राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिनिधित्व कर रही हैं।

वार्षिक प्रतिवेदन

राष्ट्रीय सेवा योजना यूनिट - प्रथम

महाविद्यालय की राष्ट्रीय सेवा योजना की प्रथम यूनिट का दस दिवसीय शिविर नया गांव चांदपुर में दिनांक 05.01.2006 से 14.02.2006 तक सम्पन्न हुआ। छात्र-छात्राओं ने ग्रामीणों को स्वच्छता के बारे में सविस्तार जानकारी दी। कार्यक्रम अधिकारी ने स्वयं सेवकों के साथ गाँव में भ्रमण कर ग्रामीणों की समस्याओं के बारे में जानकारी ली व उनके निराकरण के सुझाव दिए। साक्षरता के प्रति ग्रामीणों को जागरूक बनाने के लिए साक्षरता रैली के माध्यम से घर-घर जाकर निरक्षर लोगों को साक्षर बनाने का प्रयास किया गया। दस दिन के शिविर में छात्र-छात्राओं द्वारा नुक्कड़ नाटक, विचार गोष्ठी, स्वास्थ्य सम्बन्धी चर्चा, पर्यावरण, योगाभ्यास आदि गतिविधियों का सम्पादन करते हुए शिविर का समापन हुआ।

शिविर में छात्र-छात्राओं के अतिरिक्त महाविद्यालय के प्राचार्य, प्राध्यापक व नगर के सम्भ्रान्त नागरिक उपस्थित थे।

राजीव सिरोही
कार्यक्रम अधिकारी
राष्ट्रीय सेवा योजना यूनिट प्रथम

राष्ट्रीय सेवा योजना यूनिट - द्वितीय

इस सत्र में विभिन्न अवसरों पर स्वयं सेवक/स्वयं सेविकाओं को प्राचार्य, कार्यक्रम अधिकारी, पूर्व कार्यक्रम अधिकारियों द्वारा रा.से.यो. के स्वरूप, उद्देश्यों, कार्यक्रमों आदि से अवगत करवाकर अभिविन्यास किया। रा.से.यो. इकाई द्वितीय द्वारा दिनांक 17.02.2006 को आयोजित प्रथम एक दिवसीय शिविर में स्वयं सेवकों/स्वयं सेविकाओं को श्रमदान का महत्व कार्यक्रम अधिकारी द्वारा बताया गया। इस अवसर पर स्वयं सेवकों/स्वयं सेविकाओं द्वारा श्रमदान भी किया गया।

दिनांक 21.02.2006 तथा दिनांक 22.02.2006 को ग्राम चाँदपुर में आयोजित द्वितीय व तृतीय "एक दिवसीय शिविर" में स्वयं सेवकों/स्वयं सेविकाओं ने ग्रामीणों के मध्य सामाजिक जागरूकता कार्यक्रम के अन्तर्गत घर-घर जाकर उन्हें घूसखोरी, दहेज प्रथा, अशिक्षा, निर्धनता आदि सामाजिक बुराइयों से अवगत कराया।

दिनांक 08.03.2006 को ग्राम चाँदपुर में आयोजित चतुर्थ एक दिवसीय शिविर में स्वयं सेवकों/स्वयं सेविकाओं ने ग्रामीणों को प्रौढ़ शिक्षा का महत्व बताया तथा उन्हें प्रेरित किया। साथ ही उन्होंने ग्राम में श्रमदान किया।

अन्य नियमित कार्यक्रमों के तहत स्वयं सेवकों/स्वयं सेविकाओं को पर्यावरण संवर्धन, वृक्षारोपण, पल्स पोलियो अभियान में सहयोग, स्वच्छता अभियान आदि के अन्तर्गत 120 घण्टे पूर्ण किये।

रा.से.यो. इकाई द्वितीय के द्वारा ग्राम चाँदपुर में दिनांक 23.02.2006 से दिनांक 04.03.2006 तक "दस दिवसीय विशेष शिविर" का आयोजन किया गया। इसमें विभिन्न कार्यक्रम आयोजित किये गये।

राष्ट्रीय सेवा योजना की द्वितीय इकाई के दस दिवसीय विशेष शिविर का उद्घाटन दिनांक 23.02.2006 को डा. सी. पी. गुप्त, कार्यवाहक प्राचार्य, डी.ए.वी. (पी.जी.) कॉलिज, बुलन्दशहर के द्वारा किया गया।

दिनांक 24.02.2006 को स्वयं सेवकों ने ग्राम में साक्षरता रैली निकाली। इसमें ग्रामवासियों

को साक्षरता के महत्व से अवगत करवाया गया तथा बाल शिक्षा, बालिका शिक्षा, महिला शिक्षा व प्रौढ़ शिक्षा के विभिन्न पर प्रकाश डाला। सांध्यकालीन सत्र में श्री हरपाल सिंह, कर्मचारी जिला साक्षरता कार्यालय के द्वारा स्वयं सेवकों व ग्रामीणों को साक्षरता से सम्बन्धित सरकारी योजनाओं से अवगत कराया गया। साथ ही साथ सेविकाओं ने साक्षरता सम्बन्धी एक हास्य नाटिका भी प्रस्तुत की।

दिनांक 25.02.2006 को स्वयं सेवकों ने ग्राम की सड़कों की सफाई की व ग्रामवासियों को सफाई का महत्व बताया।

दिनांक 26.02.2006 को ग्राम में पल्स पोलियो रैली निकाली, दीवारों पर नारे लिखे, पोस्टर चिपकाये तथा घर-घर जाकर स्वयं सेवकों ने बालक-बालिकाओं को बूथ ले जाकर पोलियो ड्राप्स पिलवाई। इसके लिए डॉ. बी. एल. शर्मा, जिला पल्स पोलियो अधिकारी व उप मुख्य चिकित्सा अधिकारी, बुलन्दशहर ने स्वयं सेवकों को स्वयं उपस्थित रहकर प्रोत्साहित किया। सायंकालीन सत्र में ग्रामवासियों को पोलियो के विषय में जानकारी देकर भ्रांतियाँ दूर की।

दिनांक 27.02.2006 को स्वयं सेवकों ने ग्राम में "वृक्षारोपण व पर्यावरण जागरूकता" रैली निकाली तथा ग्राम में वृक्षारोपण किया। सांयकालीन सत्र में मुख्य अतिथि श्री के. के. सक्सैना, पूर्व जिला विकास अधिकारी ने स्वयं सेवकों को पर्यावरण संवर्धन के महत्व को बताया तथा "स्मृति वृक्षारोपण" को सामान्य रूप से अपनाने का आहवान किया।

दिनांक 28.02.2006 को स्वयं सेवकों ने ग्राम चाँदपुर में "जागरूकता रैली" निकाली। इसमें प्राथमिक चिकित्सालय की सफाई की गयी तथा ग्रामवासियों को प्राथमिक चिकित्सा की जानकारी दी। सायंकालीन सत्र में ग्राम में निःशुल्क कैम्प का आयोजन किया गया जिसमें प्रसिद्ध त्वचा रोग विशेषज्ञ डॉ. नकुल उपाध्याय ने ग्रामवासियों का निःशुल्क परीक्षण किया।

दिनांक 01.03.2006 को स्वयं सेवकों ने ग्राम में महिला सशक्तीकरण व जागरूकता कार्यक्रम का आयोजन किया। इसमें मुख्य अतिथि डॉ. रानीबाला गौड़, रीडर-हिन्दी विभाग व पूर्व सदस्य जिला उपभोक्ता फोरम ने ग्रामवासियों को उपभोक्ता सम्बन्धी विभिन्न अधिकारों व नियमों से अवगत कराया। सायंकालीन सत्र में "महिला अधिकार" विषय पर संगोष्ठी का आयोजन किया।

दिनांक 02.03.2006 को स्वयं सेवकों ने ग्राम में "सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध सामाजिक जागरूकता" का अभियान काव्य गोष्ठी के माध्यम से किया। इसमें कवि श्री शंभूनाथ त्रिपाठी 'देव', कवि आलोक 'बेजान', कवि अक्षय प्रताप 'अक्ष्य' आदि ने समाज में व्याप्त बुराइयों जैसे भ्रष्टाचार, साम्प्रदायिकता आदि पर कुठाराघात अपनी कविताओं के माध्यम से किया।

दिनांक 03.03.2006 को स्वंय सेवकों ने प्राथमिक स्कूल में पगडण्डी को ऊँचा करके श्रमदान किया। सायंकालीन सत्र में मुख्य अतिथि श्री सी. राम, उपनिदेशक, कृषि विभाग ने स्वयं सेवकों व ग्रामवासियों को कृषि उत्पादन, खाद्य सुरक्षा तथा स्वावलम्बन सम्बन्धी विभिन्न पहलुओं पर विस्तृत जानकारी दी।

दिनांक 04.03.2006 को शिविर के समापन समारोह में स्वयं सेवकों व ग्रामीणों द्वारा विभिन्न सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत किये गये। साथ ही दस दिन में किये गये कार्यों का उल्लेख किया गया। अन्त में कार्यक्रम अधिकारी ने ग्रामीणों को सहयोग के लिए धन्यवाद दिया।

डॉ0 राजेश गर्ग
कार्यक्रम अधिकारी
राष्ट्रीय सेवा योजना यूनिट द्वितीय

सांस्कृतिक व साहित्यिक समिति का वार्षिक प्रतिवेदन

डॉ0 ए0 पी0 तिवारी
संयोजक
अध्यक्ष, रसायन विज्ञान विभाग

महाविद्यालय में 22 दिसम्बर, 2006 को स्वर्ण जयन्ती समारोह के अन्तर्गत वाद-विवाद प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। वाद-विवाद प्रतियोगिता में ए0 के0 पी0 डिग्री कॉलिज, खुर्जा ने चल वैजयंती जीती तथा इसी कॉलिज की छात्रा कु0 कृति कौशिक को प्रथम पुरस्कार दिया गया। स्वर्गीय सेठ श्याम बिहारी लाल गर्ग और महेश चन्द्र गुप्त मैमोरियल वाद-विवाद प्रतियोगिता का विषय था - "वर्तमान परिवेश में नैतिक मूल्यों के पतन का आधार शैक्षणिक गुणवत्ता का ह्रास है।" कार्यक्रम का शुभारम्भ मुख्य अतिथि नगरपालिका बुलन्दशहर के चेयरमैन श्री संजीव अग्रवाल ने माँ सरस्वती की प्रतिमा के समक्ष द्वीप प्रज्जवलित करके किया। वाद-विवाद प्रतियोगिता में ए0 के0 पी0 (पी0 जी0) कॉलिज खुर्जा की टीम को विजयी घोषित किया गया। उक्त टीम को चलवैजयंती दी गयी। इसी कॉलिज की कु0 कृति कौशिक प्रथम, कु0 लकी चौहान द्वितीय व डी0ए0वी0 कॉलिज बुलन्दशहर की छात्रा कु0 चेताली सक्सेना को तृतीय पुरस्कार दिया गया।

वाद-विवाद प्रतियोगिता में 17 प्रतिभागियों को सांत्वना पुरस्कार दिए गये। निर्णायक मंडल में डॉ0 वीरेन्द्र सिंह, श्री डी0 डी0 शर्मा, श्रीमती अनीता भारद्वाज थे। कार्यक्रम की अध्यक्षता श्री राजीव कुमार अग्रवाल ने की। प्रतियोगिता के संयोजक डॉ0 आर0 एस0 उपाध्याय व समन्वयक डॉ0 विकास शर्मा रहे। कॉलिज के प्राचार्य डॉ0 सी0 पी0 गुप्त और प्रबन्ध समिति के सचिव श्री अनिल कुमार गर्ग ने सभी उपस्थित लोगों को धन्यवाद दिया। कार्यक्रम का संचालन डॉ0 ए0 पी0 तिवारी ने किया।

वर्ष 2006–2007 की अंग्रेजी विभाग की अकादमिक गतिविधियाँ : एक दृष्टि

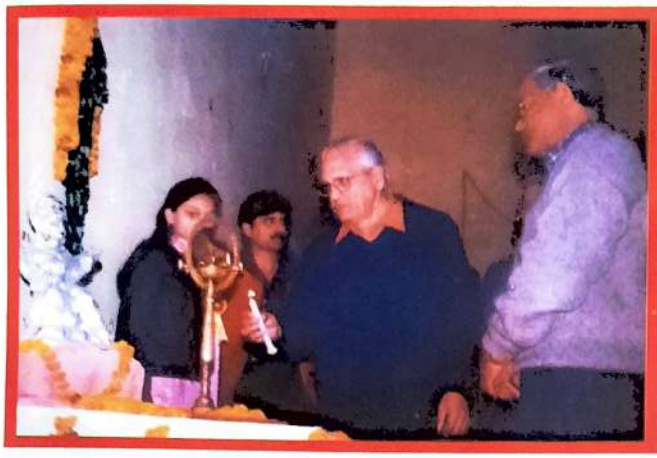

अंग्रेजी विभाग की संगोष्ठी का दीप प्रज्ज्वलन करके उद्घाटन करते कार्यवाहक प्राचार्य डॉ0 सी0पी0 गुप्त, पास में खड़े हैं मुख्य अतिथि प्रो0 एस0के0 चौहान

अंग्रेजी विभाग के लिट्रेरी कार्निवाल–2007 के अवसर पर बोलते हुए मुख्य अतिथि प्रो0 श्रवण कुमार शर्मा

अंग्रेजी विभाग के लिट्रेरी कार्निवाल–2007 के अवसर पर मंच पर आसीन श्री आर0सी0 अग्रवाल, डा0 सी0पी0 गुप्त (कार्यवाहक प्राचार्य) डॉ0 चन्द्रपाल शर्मा (विशिष्ट अतिथि), प्रो0 श्रवण कुमार शर्मा (मुख्य अतिथि), डॉ0 अजय शर्मा (मुख्य वक्ता)

अंग्रेजी विभाग की सेमिनार में मंच पर आसीन डॉ0 अजय शर्मा, श्री आर0सी0 अग्रवाल व डॉ0 विकास शर्मा

डॉ0 ए0के0 सिंह, अंग्रेजी विभाग की एक दिवसीय संगोष्ठी का द्वीप प्रज्ज्वलन कर उद्घाटन करते हुए साथ में इंगलिश लिट्रेरी एसोसिएशन की सचिव कु0 ललिता शर्मा

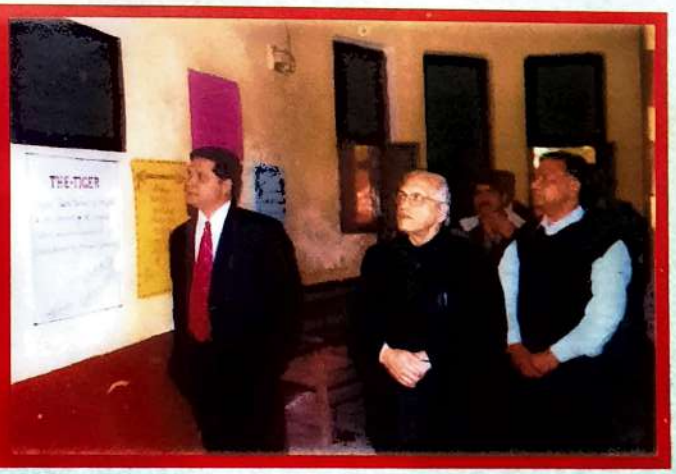

अंग्रेजी विभाग की लिट्रेरी पोस्टर प्रदर्शनी का अवलोकन करते डॉ0 ए0के0 सिंह, डॉ0 सी0पी0 गुप्त व डॉ0 एम0 के0 जैन

वर्ष 2006=2007 की अंग्रेजी विभाग की अकादमिक गतिविधियाँ : एक नजर

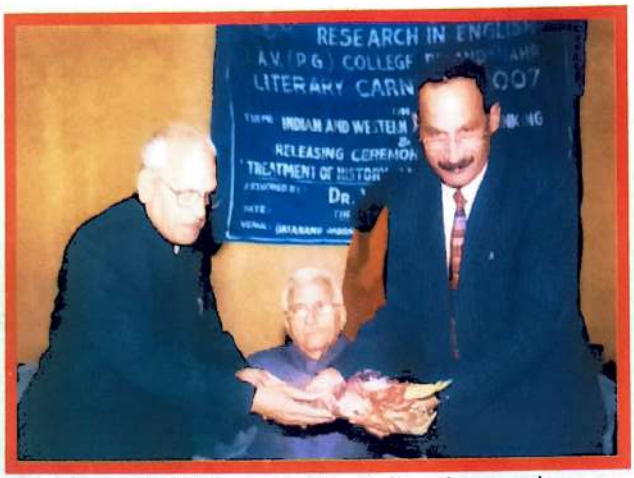

13 फरवरी 2007, को अंग्रेजी विभाग द्वारा आयोजित 'लिट्रेरी कार्निवाल–2007' के अवसर पर मुख्य अतिथि गुरुकल कांगड़ी वि0वि0, हरिद्वार के प्रो0 श्रवण कुमार शर्मा का स्वागत करते हुए कार्यवाहक प्राचार्य डॉ0 सी0पी0 गुप्त, मध्य में विशिष्ट अतिथि डॉ0 चन्द्रपाल शर्मा

अंग्रेजी विभाग के लिट्रेरी कार्निवाल–2007 का दीप प्रज्जवलन कर उद्घाटन करते कार्यवाहक प्राचार्य डॉ0 सी.पी. गुप्त पास में खड़े हैं अंग्रेजी विभागाध्यक्ष डॉ0 विकास शर्मा, श्री आर.सी. अग्रवाल व डॉ0 अजय शर्मा

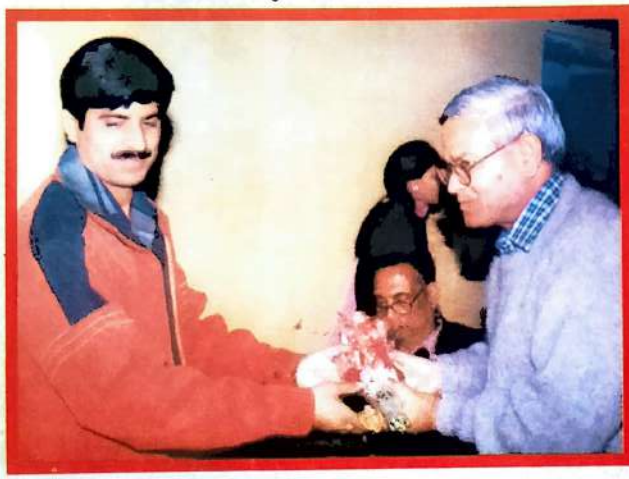

अंग्रेजी विभाग की संगोष्ठी में दयालबाग वि0वि0 दयालबाग, आगरा के अंग्रेजी विभागाध्यक्ष प्रो0 एस0के0 चौहान का स्वागत करते, महाविद्यालय के अंग्रेजी विभागाध्यक्ष डॉ0 विकास शर्मा

डॉ0 विकास शर्मा की पुस्तक का विमोचन करते प्रो0 श्रवण कुमार शर्मा

अंग्रेजी विभाग की संगोष्ठी में उपस्थित प्राध्यापक व छात्र

अंग्रेजी विभाग की एक दिवसीय संगोष्ठी में मंच पर श्री आर0सी0 अग्रवाल, डॉ0 सी0पी0 गुप्त, डॉ0 ए0के0 सिंह, डॉ0 अजय शर्मा व डॉ0 विकास शर्मा

The English Literary Association : Department of English

ANNUAL REPORT

Ms. Lalita Sharma
Secretary,
The English Literary Association
Department of English

To promote academic standards among the students of P. G. classes and research scholars, English department has organized seminars and literary feasts throughout the year under the banner of the English Literary Association. Our Head of the Department, Dr. Vikas Sharma is the patron of the association. This very year on 2nd December 2006, the English Literary Association organised One day symposium on the topic entitled 'Influence of French Revolution on Romantic Poertry'. Dr. A. K. Singh, member of U. P. Madhyamik Shiksha Seva Chayan Board, Allahabad was the Chief Guest on this occasion. He inaugrated the Literary Poster Exhibition and delivered a thought-provoking lecture on the same topic. Dr. Ajay Sharma, Reader and Head, Department of English, M. M. (P. G.) college, Modinagar also delivered a lecture on the same topic. The Principal of the college presided over the symposium. To create interest in English literature, our association organised a Literary Quiz for the students of postgraduate classes.

On 7th December 2006, the department organised a One day Literary Feast on the topic entitled – 'Kavikul Guru Kalidas and Indian Aesthetics'. Prof. S. K. Chauhan, Head, Department of English, Dayal Bagh Educational Institute (Deemed University) Agra was the Chief Guest on this occasion. He inaugrated the feast and delivered a lecture on the topic. Dr. C. P. Sharma Formerly Reader and Head, Department of Hindi, R. S. S. (P.G.) College, Pilkhuwa (Ghaziabad) was the Guest of Honour. Dr. M. L. Yadav, Reader and Head, Department of Sanskrit, Government College, Jahangirabad and Dr. Ajay Sharma, Reader and Head, Department of English, M. M. (P.G.) College, Modinagar were the resource persons in this one day literary feast. The English Literary Association organised a Literary Quiz for the students of undergraduate and postgraduate classes of the colleges of Bulandshahr district.

On 20th December 2006, the department again organised a 'Cultural Meet' for the students of P. G. Classes. Dr. C. P. Gupta, Principal of the college, inaugrated this Cultural Meet by candle lighting.

On 13th February 2007, the department again organised a Literary Carnival – 2007 under the banner of the English Literary Association. The theme of this Literary Carnival – 2007 was "Indian and Western Aesthetic Thinking". Professor S. K. Sharma, Department of English, Gurukul Kangri University, Haridwar was the Chief Guest in this carnival. This day was memorable for all of us, as on this day we had the releasing ceremony of Dr. Vikas Sharma's book entitled "Treatment of History in Indian English Novels".

We hope that in coming years the department would touch new academic heights.

PROGRESS REPORT – Department of Physics

Dr. A. K. Sharma
Reader & Head, Department of Physics

U. G. classes are running from 1969 & P. G. classes in the department started from 1998 under self-finance scheme & the classes were given permanent affiliation in year 2006. The department. was recongised as research centre in the year 2004 and to the credit of the department about ten research scholars have applied for registration in Ph. D. under the supervision of Dr. A. K. Sharma, Reader & Head, Department of Physics & Dr. R. S. Upadhyay, Reader, Department of Physics. Both of us have research publications in Indian and International journals of repute. Our student Charu Varshney topped in whole of C. C. S. University, Meerut in year 2005 in the examination of M.Sc. (Physics). In B.Sc., every year our students stand under first ten ranks in university merit list. We have sufficient lab facilities in U.G. & P.G. classes. The contribution of Dr. G. P. Gupta, formerly Head of the Department can not be forgotten who retired in June 2000. Our U. G. students have been selected for M. C. A. Vanasthali & our student Miss. Richa Garg has been selected by Software Multinational Company WIPRO for training & job opportunities both. ●

वातायन

इतिहास विभाग – एक सिंहावलोकन

सत्र (2006–07)

इस सत्र में स्नातकोत्तर इतिहास विभाग में ऐतिहासिक शोध की प्रस्तुति व जिज्ञासा में वृद्धि के प्रयासों की परम्परा का निर्वहन करते हुए विभाग में "College History Research Association (C.H.R.A.) की निम्न नयी कार्यकारिणी का गठन किया गया –

मुख्य संरक्षक	–	डॉ0 सी0 पी0 गुप्त (कार्यवाहक प्राचार्य)
संरक्षकगण	–	डॉ0 प्रतिभा गुप्ता (विभागाध्यक्ष)
	–	श्री ज्ञानेन्द्र शर्मा
	–	डॉ0 अंशु सिंह
सलाहकार	–	डॉ0 राजेश गर्ग
अध्यक्ष	–	निर्वेश कुमार (एम0ए0 द्वितीय वर्ष)
उपाध्यक्ष	–	कु0 नुपुर (एम0ए0 द्वितीय वर्ष)
सचिव	–	अनुतोष कुमार (एम0ए0 प्रथम वर्ष)
सहसचिव	–	कु0 शगुफ्ता (एम0ए0 प्रथम वर्ष)

C.H.R.A. के द्वारा विभाग में ऐतिहासिक शोध की महत्ता पर प्रकाश डालने हेतु एक वृहद संगोष्ठी का आयोजन महाविद्यालय के दयानन्द सभागार में किया गया, जिसका विषय था "आधुनिक इतिहास लेखन"। संगोष्ठी में मुख्य वक्ता के रूप में इतिहास के प्रख्यात विद्वान् डॉ0 के0 डी0 शर्मा, रीडर, एन0आर0ई0सी0 कॉलिज, खुर्जा उपस्थित रहे। संगोष्ठी में बोलते हुए उन्होंने कहा कि "आधुनिक काल में इतिहासकारों ने लेखन में आलोचनात्मक और वैज्ञानिक पद्धति को अपनाया है। क्रमबद्ध ऐतिहासिक चिंतन को विकसित किया जा रहा है। अब इतिहासकार कारण व परिणाम में संबंध ढूँढने लगे हैं। विभिन्न क्षेत्रों में वैज्ञानिक प्रगति के परिणामस्वरूप शोध की प्रमाणिकता की जाँच हेतु प्रयोगशालाओं की भी मदद ली जा रही है।"

इस सत्र की अध्यक्षता महाविद्यालय के प्राचार्य डॉ0 सी0 पी0 गुप्त ने की। विभागाध्यक्ष डॉ0 प्रतिभा गुप्ता ने छात्र-छात्राओं को ऐतिहासिक अध्ययन की उपयोगिता से अवगत कराया। श्री ज्ञानेन्द्र शर्मा व डॉ0 अंशु सिंह ने विषय की गंभीर विवेचना प्रस्तुत की। सेमिनार के समन्वयक डॉ0 राजेश गर्ग ने ऐतिहासिक शोध को अधिक प्रमाणिक बनाने का आहवान किया।

ऐतिहासिक महापुरूषों की जयंती के महत्व को इंगित करते हुए C.H.R.A. द्वारा 23 जनवरी को नेताजी सुभाष चन्द्र बोस की जयंती पर नेताजी की प्रतिमा पर माल्यार्पण तथा गोष्ठी का आयोजन किया गया जिसमें श्री ज्ञानेन्द्र शर्मा व डॉ0 राजेश गर्ग तथा अनेक छात्र-छात्राओं ने भाग लिया।

विभाग में ऐतिहासिक शोध के क्रम में विभागाध्यक्ष डॉ0 प्रतिभा गुप्ता के निर्देशन में पी0-एच0डी0 उपाधि हेतु शोध प्रबन्ध के पूर्ण होने के अवसर पर संगोष्ठी का आयोजन हुआ, जिसमें शोध छात्र आशीष चन्द्रा, धम्मदीप व प्रज्ञा ने अपने-अपने शोध विषयों पर सारगर्भित प्रस्तुतीकरण किया।

पुस्तकालय विभाग का प्रतिवेदन

डॉ0 रामावतार शर्मा
पुस्तकालयाध्यक्ष

महाविद्यालय के विशाल पुस्तकालय में विभिन्न विषयों की 63782 पुस्तकें हैं। स्नातकोत्तर छात्रों व शोधार्थियों के लिए प्रत्येक विषय में सन्दर्भ पुस्तकें व पाठ्यपुस्तकें उपलब्ध हैं। साथ ही राष्ट्रीय व प्रदेश स्तर के हिन्दी व अंग्रेजी भाषा के समस्त समाचार पत्र व पत्रिकायें छात्र-छात्राओं के अध्ययनार्थ पुस्तकालय में सुलभ हैं। लगभग समस्त विषयों में शोध-पत्रिकाऐं नियमित रूप से पुस्तकालय में मंगाई जा रही हैं। छात्र-छात्राओं की अध्ययन-सुविधा को दृष्टिगत रखते हुए पुस्तकालय में वाचनालय भी है, जहाँ बैठकर छात्र-छात्राऐं व शोधार्थी लाभान्वित होते हैं। पुस्तकालय में इस सत्र में विभिन्न विषयों में लगभग 1500 नयी पुस्तकें क्रय की गयी हैं। समस्त नई पुस्तकें विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नयी दिल्ली के द्वारा अधिकृत नये पाठ्यक्रम को ध्यान में रखकर क्रय की गई हैं।

महाविद्यालय में पुस्तकालय समिति भी कार्यरत है, जिसके अध्यक्ष महाविद्यालय के कार्यवाहक प्राचार्य डॉ0 सी0 पी0 गुप्त हैं व सचिव डॉ0 रामअवतार शर्मा, पुस्तकालयाध्यक्ष हैं। समस्त विभागों के विभागाध्यक्ष इस पुस्तकालय समिति के सदस्य हैं। यह समिति पुस्तकालय के उन्नयन व विकास के लिए समय-समय पर सकारात्मक सुझाव देती रहती है। इसकी बैठकों में ही प्रत्येक वर्ष नई पुस्तकों के क्रय के सम्बन्ध में निर्णय लिया जाता है।

छात्र-छात्राओं को पाठ्यपुस्तकों के आदान-प्रदान करने हेतु विशेष काउंटर की भी व्यवस्था हैं। पुस्तकालय में उपपुस्तकालयाध्यक्ष श्री कन्हैयालाल शर्मा के अतिरिक्त श्रीमती उपमा वशिष्ठ (कैटालॉगर), श्री रामसुन्दर (पुस्तकालय लिपिक), श्री लियाकत अली (बुक लिफ्टर), श्री नवरत्न सिंह (बुक लिफ्टर) व श्री भोजराज सिंह एवं श्री गोपीचन्द पुस्तकालय के कार्यों को सुचारू रूप से संचालित करते हैं।

लै0 कर्नल नेगी, कार्यवाहक प्राचार्य डॉ0 सी0पी0 गुप्त,
एन0सी0सी0 अधिकारी लै0 गौतमवीर महाविद्यालय के प्राध्यापकों एवं
कैडिटों के साथ वृक्षारोपण अभियान का शुभारम्भ करते

लै0 कर्नन नेगी प्रशिक्षण शिविर का निरीक्षण करते हुए

परेड के लिए तत्पर एन0सी0सी0 कैडिट

गणतन्त्र दिवस पर शपथ प्राप्त करते महाविद्यालय कैडिट

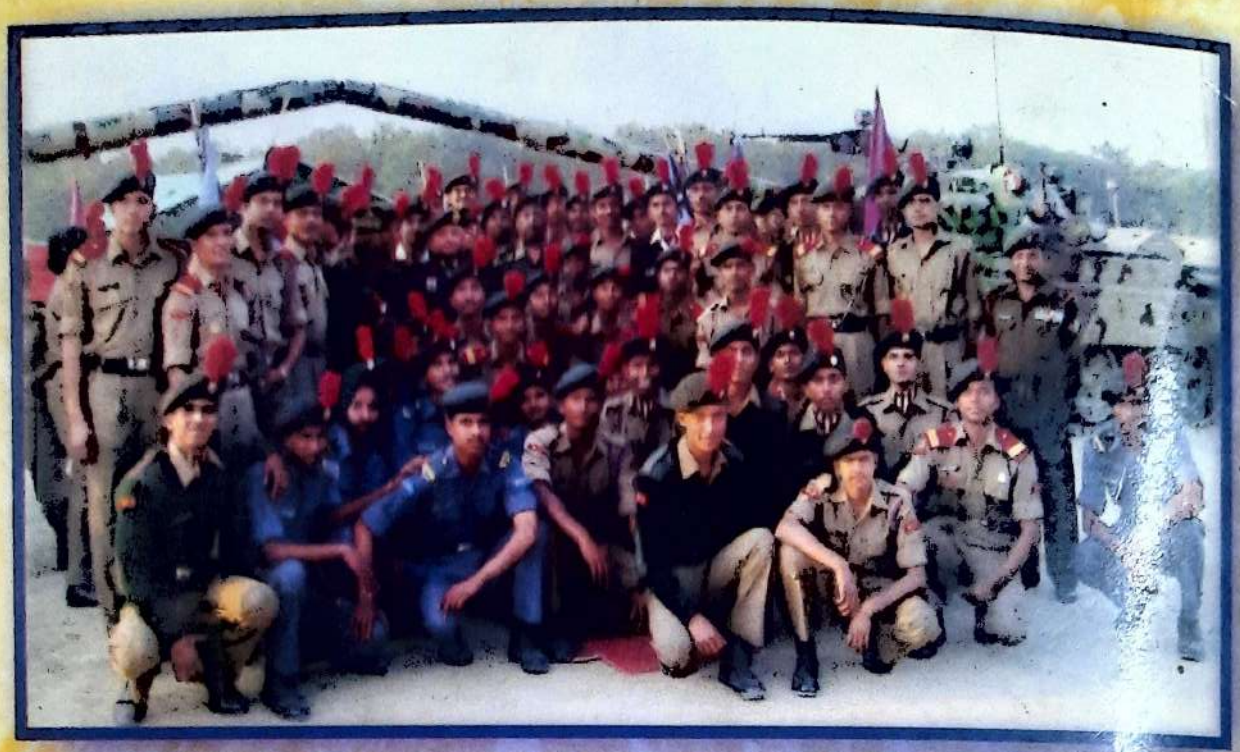

गणतन्त्र दिवस शिविर में भाग लेते एन0सी0सी0 कैडेट

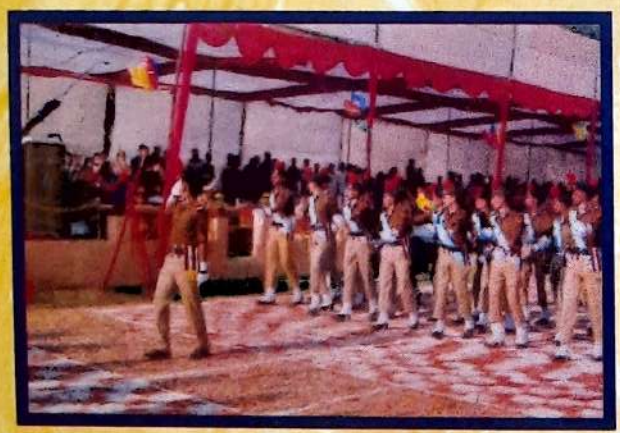

गणतन्त्र दिवस पर अण्डर आफिसर अनिरुद्ध के नेतृत्व में सलामी देते महाविद्यालय कैडिट

गणतन्त्र दिवस परेड में सम्मान के रुप में चिन्ह प्राप्त करते हुए अण्डर आफिसर अनिरुद्ध कुमार

प्रगति प्रिन्टर्स, डी.ए.वी. डिग्री कॉलिज गेट, बुलन्दशहर मो. 9412612393, 9319715990